संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी
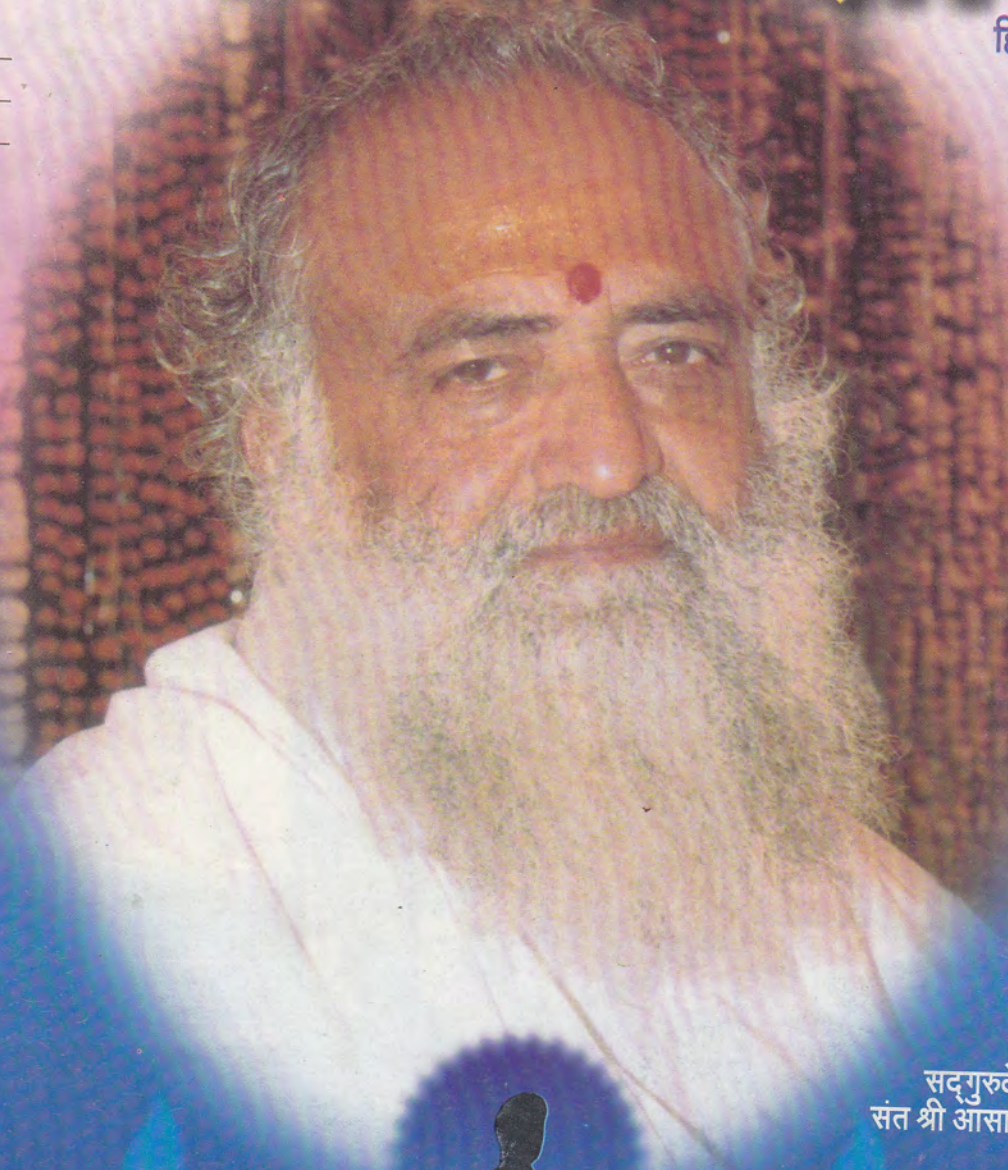
वर्ष: ८
अंक: ६६
जून १९९८

सद्गुरुदेव पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी महाराज

सद्गुरु ऐसा कीजिये, निरखत करे निहाल।
आतम ज्योति जगाय के, काटे भव जंजाल॥

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ८
अंक : ६६
९ जून १९९८

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, भार्गवी प्रिन्टर्स राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

प्रस्तुत है...

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग YES चैनल पर
रोज सुबह ८-३० से ९. दोपहर १-३० से २.

अब आश्रम विषयक जानकारी
Internet पर उपलब्ध है : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

यज्ञार्थ कर्म

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥

'यज्ञ के निमित्त किये जानेवाले कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ ही यह मनुष्य-समुदाय कर्मों से बँधता है । इसलिए हे अर्जुन ! तू आसक्ति से रहित होकर यज्ञ के निमित्त ही भलीभाँति कर्त्तव्य कर्म कर ।' **(भगवद्गीता : ३.९)**

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी ने जीवों के दुःखों की निवृत्ति का उपाय खोजा । उन्होंने देखा कि जीव कर्म तो करते हैं लेकिन यज्ञार्थ कर्म नहीं करते हैं तो दुःख और अशांति को पाते हैं, जन्म-जन्मान्तर को पाते हैं । अतः यज्ञार्थ कर्म करें । उन्होंने यज्ञ करने की सलाह भी दी और सामग्री भी दी ।

यज्ञ वह है जो सृष्टिकर्त्ता के स्वरूप में विश्रांति दिला दे । कोई भी कर्म हो उसमें यज्ञबुद्धि कर दें तो वह कर्म कर्त्ता को बंधनों से छुड़ाता है जबकि भोगवृत्ति से किया गया कर्म कर्त्ता को बाँधता है । कर्म में यदि फलासक्ति होती है, अहं की पुष्टि होती है तो ऐसा कर्म कर्त्ता को बाँधता है । कर्म में यदि यज्ञबुद्धि आ जाये, कर्म में अगर उदारता और स्नेह आ जाये तो उस कर्म से कर्त्ता अपने स्वरूप का बोध पानेवाला बन जाता है ।

कुछ लोग आलस्य, निद्रा के वश होकर कर्म का त्याग करते हैं । यह तामसी त्याग है । तामस त्यागवाले मूढ़ योनि अर्थात् वृक्ष आदि योनियों को प्राप्त होते हैं । कुछ लोग कर्म को दुःखरूप समझकर कर्म का त्याग करते हैं । यह राजस त्याग कहा जाता है । ये लोग दुःखद योनि को प्राप्त होते हैं । कुछ लोग ऐसे होते हैं जो कर्म के रहस्य को समझकर सात्त्विक त्याग करते हैं । जैसे, अर्जुन युद्ध के मैदान से रवाना हो जाना चाहता है ।

प्रकृति के मूल में देखा जाय तो सर्वत्र यज्ञ हो रहा है । भगवान भास्कर प्रकट होते हैं, अनन्त-अनन्त जीवों को प्राणशक्ति देते हैं, पक्षी किल्लोल करते हैं, पेड़-पौधे जीवन पाते हैं, यहाँ तक कि रोगी मनुष्य भी प्रभात को कुछ शांति पाते हैं । सूर्यनारायण सतत यज्ञकर्म कर रहे हैं । चन्द्रमा यज्ञकर्म कर रहा है । दरिया भी उछल-कूद करके यज्ञ ही कर रहा है । पृथ्वी माता भी यज्ञ कर रही हैं ।

प्रकृति के साथ तादात्म्य करें तो प्रकृति की गहराई में स्नेह और उदारता है । स्नेह और उदारता प्रकृति के अपने परमात्म-स्वभाव से आए हैं । जीव का भी पारमार्थिक स्वभाव स्नेह और उदारता है । किन्तु वह स्वार्थपूर्ण कर्म करता है तो उसका स्नेह, उसकी उदारता शुष्कता और संकीर्णता में बदल जाती है । जब भीतर से आदमी संकीर्ण और शुष्क होता है तो उसके कर्म बाँधनेवाले होते हैं किन्तु जब वह भीतर से स्नेह और उदारता से भर जाता है तो उसके कर्म परमात्मा से मिलानेवाले हो जाते हैं । स्नेह और उदारता से जो कर्म होते हैं वे यज्ञकर्म हैं ।

व्यक्तित्व की संकीर्णता कुटुम्ब से अन्याय करवा देगी । कुटुम्ब की संकीर्णता पड़ोस से अन्याय करवा देगी लेकिन आज के मनुष्य को पता नहीं कि स्वार्थ से प्रेरित होकर जो-जो कर्म वह करता है वे ही कर्म उस बेचारे को बाँध देते हैं, अशांत कर देते हैं और दुःखी कर देते हैं । इसलिए भगवान कहते हैं :

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥

यज्ञ के निमित्त किये जानेवाले कर्मों के अतिरिक्त जो भी कर्म किये जाते हैं उन कर्मों से मनुष्य-समुदाय बँध जाता है और जो यज्ञार्थ कर्म किये

जाते हैं उससे मनुष्य-समुदाय मुक्ति को पाता है।

यह प्रश्न उठ सकता है कि सब लोग यदि सेवा-भाव से, निष्कामभाव से यज्ञार्थ कर्म करें तो फिर गुजारा कैसे होगा ? प्रकृति की गहराई में सब कार्य सेवा-भाव से होता है। सूर्य, चंद्र, सेवाभाव से कार्य करते हैं। हवाएँ सेवाभाव से बह रही हैं। तुम्हारी आँखें भी तो सेवाभाव से काम कर रही हैं। तभी तो शरीर का अस्तित्व टिका है। आँख देखती है खाने योग्य पदार्थ लेकिन जिद नहीं करती कि 'मैंने देखा है अतः पदार्थ मेरा हो गया... मुझमें भर दो।' पदार्थ अगर आँख में भर दिया जाय तो आँख की सलामती नहीं रहेगी। आँखें देखती हैं, हाथ उठाते हैं। हाथ अगर आग्रह करे कि 'पदार्थ मैंने उठाया, वह मेरा हो गया, मुझमें भर दो' तो यह असंभव है। फिर भी संभव करना चाहो तो हाथ निकम्मे बन जायेंगे। आँखों ने देखा, यज्ञ कर दिया। हाथों ने उठाया तथा मुँह को दे दिया, यज्ञ कर दिया। मुँह ने चबाया और गले को अर्पण कर दिया, यज्ञ कर दिया। गले ने पसार कर दिया। खाद्य एक तरफ हो गया तथा पेय दूसरी तरफ हो गया। पेट में पहुँचा तो पेट ने भी रस बनाकर अपनी-अपनी जगह भेज दिया और बाकी जो त्याज्य है उसे त्याग दिया। अगर त्यागने योग्य को पकड़े रखे तो बीमार हो जाय और देने योग्य को पकड़े रखे तो भी अजीर्ण हो जाये। इस तरह प्रकृति की गहराई में भी यज्ञ हो रहा है। इसके साथ तादात्म्य कर दें तो प्रकृति के मूल स्वरूप परमात्मा को पा सकते हैं।

एक राजा की सवारी गुजर रही थी। उसे देखकर एक बुढ़िया का लड़का कहने लगा :

''माँ ! मुझे राजा से मिलना है।''

माँ : '' बेटे ! हम गरीब हैं। तेरे पिता कई वर्ष पहले चल बसे। अपनी कोई पहुँच नहीं है। राजा से मिलना कोई साधारण काम नहीं है।''

लड़का : ''कुछ भी हो, माँ ! मुझे तो राजा से मिलना है।''

उसके हठ को देखकर माँ ने एक युक्ति बताते हुए कहा : ''राजा का महल बन रहा है। वहाँ जाकर काम कर और जब आठ दिन के बाद तनख्वाह मिले तो लेना मत।''

लड़के ने ऐसा ही किया। एक हफ्ता बीता, दूसरा बीता, तीसरा बीता... लड़का तनख्वाह लेने से इन्कार करता और काम बड़ी तत्परता और उत्साह से करता। उसका कार्य यज्ञार्थ हो गया। उसके कार्य का प्रभाव वजीर के दिल पर पड़ा और वजीर ने जाकर सारी बात राजा को बतायी। राजा ने उस लड़के को बुलाया। तत्परता और अहोभाव से कार्य करनेवाले उस लड़के की वाणी में माधुर्य था, दिल में स्नेह था और राजा से मिलने का जो उत्साह छुपा था, वह उमड़ आया। राजा पर उसका जादुई असर पड़ा और वह बोल उठा :

''इस लड़के को महल बनाने के काम में नहीं वरन् अपनी निजी सेवा में रख लूँ तो ?''

वजीर : ''जैसी आपकी मर्जी।''

उस लड़के को राजा की सेवा में रख दिया गया। रहने को महल और खाने को भोजन तो मिलता ही था। यदि कोई भोजन और आवास के निमित्त से प्रेरित होकर कर्म करता है उसको भी भोजन और आवास मुश्किल से मिलता है और जो सेवा के निमित्त करता है, यज्ञार्थ कर्म करता है उसको तो भोजन और आवास मिल ही जाता है। सेवा के लिए शरीर को टिकाना है यह भाव रहा तो यह यज्ञ हो गया और भोग के लिए शरीर को टिकाना है यह भाव रहा तो यह बंधन हो गया। परहित के लिए शरीर को स्वस्थ रखना यह यज्ञ हो गया लेकिन अपनेको कुछ विशेष बनाने के लिए शरीर का लालन-पालन किया तो यह बंधन हो गया।

जो यज्ञार्थ कर्म करते हैं वे तो बड़े आनंद से जीते हैं, बड़े मौज से जीते हैं। जितना-जितना परमार्थ-भाव होता है उतना-उतना भीतर का रस छलकता है, उतना-उतना मन तथा बुद्धि विलक्षण शक्ति से संपन्न हो जाते हैं।

विधवा माई के बच्चे को राजा की सेवा मिली और राजा का सान्निध्य मिलते-मिलते उसकी बुद्धि ने कुछ विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। रानी का हृदय

भी उसने जीत लिया । जितना-जितना आदमी निःस्वार्थ होता है उतनी-उतनी उसकी सुषुप्त जीवन-शक्तियाँ विकसित होती हैं । जितना-जितना आदमी स्वार्थी होता है उतनी-उतनी उसकी योग्यताएँ कुंठित हो जाती हैं और जितनी निःस्वार्थता आती है उतनी योग्यताएँ विकसित होती हैं । मनुष्य जितना अहं पोसने के लिए काम करता है उतनी उसकी योग्यताएँ क्षीण होती हैं और जितना श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिए काम करता है उतनी उसकी क्षमताएँ विकसित होती हैं ।

उस लड़के की क्षमताएँ विकसित हो गयीं । बच्चे ने राजा-रानी पर जादुई असर कर दिया । एक दिन राजा ने रानी से कहा :

''अपनेको कोई संतान नहीं है । इस युवक को अपना पुत्र घोषित कर दें ?''

रानी : ''मैं तो यही चाहती थी, पर आपसे बात करने में संकोच होता था ।''

दोनों ने निर्णय किया और उस लड़के को अपना पुत्र घोषित करके राजतिलक कर दिया । जब नगर में सवारी निकली तो राजा और राजकुमार का अभिवादन करने के लिए प्रजा सड़कों पर खड़ी थी । रास्ते में अपनी बुढ़िया माँ को लड़के ने देखा और राजा से बोला :

''पिताजी ! वे मेरी माँ हैं । उन्होंने ही मुझे आपसे मिलने का मार्ग बताया था । मैं उनके दर्शन करने को जाऊँ ?''

राजा : ''तू अकेला नहीं, मैं भी तेरे साथ चलता हूँ ।''

दोनों रथ से नीचे उतरे और बुढ़िया को प्रणाम किया । बुढ़िया के पास कितनी बढ़िया चाबी थी सत्संग की ! उसीने पुत्र को सिखाया था कि : 'निष्काम भाव से कर्म कर ।' नहीं तो लड़के के पास कोई साधन नहीं था कि राजा को वश कर ले । उस बुढ़िया के पास भी कोई साधन नहीं था कि राजा आकर उसके पैर छुए । लेकिन निष्कामता एक ऐसा अनुपम साधन है कि जिसके कारण जीव को ईश्वर के पास जाना नहीं पड़ता है बल्कि ईश्वर जीव के पास आ जाता है । बुढ़िया को राजा के द्वार नहीं खटखटाने पड़े । राजा स्वयं उसके पास आ गया । निष्कामता ने इतना प्रभाव डाला लड़के के चित्त पर कि लड़का स्वयं राजा हो गया ।

उस लड़के ने तो किसी एक राज्य के राजा को प्रसन्न किया किन्तु जो राजाओं का भी राजा है, जो परमात्मा है उसको भी प्रसन्न करना चाहो तो यज्ञार्थ कर्म करो । यज्ञार्थ कर्म करने से हृदय में तृप्ति होती है और परमात्मा प्रसन्न होता है ।

मनु महाराज कहते हैं कि जो कार्य महापुरुषों के द्वारा अनुमोदित हो, शास्त्रसंमत हो और जिसे करने से तुम्हारा हृदय प्रसन्न होता हो वह सत्कार्य प्रयत्नपूर्वक करो ।

यहाँ एक आपत्ति उठायी जा सकती है कि शराबी का हृदय तो शराब पीने से प्रसन्न होता है, जुआरी का हृदय जुआ खेलने से प्रसन्न होता है और भोगी का हृदय भोग-भोगने से खुश होता है तो वे सब पुण्य कार्य करते हैं क्या ? नहीं । इसीलिए दो बातें और भी हैं कि कार्य शास्त्रसंमत हो और महापुरुषों के द्वारा अनुमोदित हो ।

महापुरुषों के द्वारा अनुमोदित वह बात होगी जिसमें देह की, जाति की, मत-मजहब की संकीर्णता नहीं बल्कि **'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय'** की प्रवृत्ति होगी । जाति, सम्प्रदाय, समाज, वर्ण- ये सब कुछ हद तक तो उचित हैं, अच्छे हैं । ये मनुष्य की वासनाओं को नियंत्रित करने के काम आते हैं । वासनाओं को नियंत्रित करके कार्यों को व्यक्तिगत ही न रखकर समाज तक पहुँचाने में ये सामाजिकता और जातीयता सहायता करते हैं । लेकिन जातीयता में भेदभाव करके जब मनुष्य मनुष्य से नफरत कर लेता है तो वही जातीयता फिर खतरा पैदा कर देती है ।

...तो एक चीज एक आदमी के लिए हितकर हो जाती है और वही चीज दूसरे के लिए अहितकर हो जाती है । जैसे भिक्षा माँगकर खाना संन्यासी के लिए हितकर है लेकिन गृहस्थी के लिए नहीं है । विरक्त महापुरुष जनेऊ त्यागकर, चोटी त्यागकर संन्यास ले लेते हैं तो उनके लिए हितकर है लेकिन गृहस्थ आदमी जनेऊ-चोटी त्यागकर, नीति-नियमों का

त्याग करके संन्यासी जैसा जीवन जीता है तो उसके लिए अहितकर है। कुछ नीति-नियम समाज को ऊपर उठाने के लिए हैं लेकिन उन्हीं नीति-नियमों को पकड़कर, रीति-रिवाजों को पकड़कर ऊपर उठने के बजाय मनुष्य जब उसीमें सीमित हो जाता है तो उसके लिए वह बंधनरूप हो जाता है।

इसीलिए भगवान कहते हैं :

जो कर्म करते हो, यज्ञार्थ करो। सुखी-दुःखी कर्त्ता होता है। जो कर्त्ता है वही भोक्ता है। कर्त्ता अगर यज्ञबुद्धि से कर्म करता है तो उसकी आसक्ति क्षीण होती है और अपना स्वरूप प्रगट होता है। कर्त्ता अगर स्वार्थबुद्धि से कर्म करता है तो उसकी आसक्ति बढ़ती है और उसकी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। कर्त्ता पराधीन हो जाता है।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

अपने स्वधर्म को, अपने हिस्से में आये हुए कर्मों को करते-करते मर जाना अच्छा है। परधर्म भयावह होता है। जैसे, गृहस्थी का स्वधर्म है बच्चों का पालन-पोषण करना। माँ बच्चे का पालन-पोषण करती है तो यह यज्ञकर्म है लेकिन 'बच्चा बड़ा होकर सुख दे' इस भाव से पालन-पोषण करने से गड़बड़ हो जाती है। मनुष्य अपने हिस्से में आये हुए कर्मों को करता जाय। दूसरे क्या करते हैं ? उधर यदि ध्यान देगा तो यज्ञकर्म में विघ्न हो जायेगा। सेवा करनेवाला यदि सामनेवाले के गुण-दोष देखेगा तो सेवा नहीं कर सकेगा। अतः मनुष्य को यज्ञार्थ कर्म करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

एक सुखी आदमी बाजार गया। रास्ते में एक आदमी कहीं बैठा हुआ खाँस रहा था। वह बीमार तथा लाचार था। उस सुखी आदमी ने पूछा :

''तुम्हारा कोई है ?''

तब वह बोला : ''मेरा तो कोई नहीं है।''

उस सुखी आदमी को दया आयी तो उसे घर ले आया तथा उसका इलाज करवाया। उसको बिस्तर पर सुलाया। यह तो कर्त्ता का सात्त्विक भाव है, यज्ञार्थ कर्म है। वह बीमार आदमी खाँस रहा है। सुखी आदमी के मन में आया कि 'यह फुटपाथ पर पड़ा था। मैं इसे ले आया हूँ। ऐसा कोई नहीं कर सकता है।' वह सात्त्विक भाव से राजस में आ गया। खाँसनेवाले रोगी ने थूक दिया, गंदगी कर दी, तो सुखी आदमी को गुस्सा आ गया। उसने कहा : ''ये लोग तो फुटपाथ के ही अधिकारी हैं। निकल जा बाहर।'' उसने डंडा उठाकर आँखें दिखा दीं।

कर्म तो यज्ञार्थ हुआ पर कर्त्ता सावधान नहीं रहा तो सत्त्व से रजस् में और राजस् से तमस् में आ गया। अतः कर्त्ता को सावधान रहना जरूरी है। जब रजस्-तमस् आने लगे तब कर्त्ता समझे कि मैं क्या लाया था और क्या ले जाऊँगा ? जो कुछ भी है वह सब जगन्नियंता का ही तो है। यहाँ कर्त्ता अनंत से जुड़ा है, परमात्मा से जुड़ा है। उस परमात्मा से अपनेको अलग करके अगर कोई सत्कर्म करने का अहंकार करता है तो कर्त्ता बँध जाता है। आपके पास जो कुछ है उसे यज्ञार्थ कर्म में लगा दो तो आपको ज्यादा मिलता जायेगा और आपके पास जो कुछ है उसे स्वार्थ में संकीर्ण कर दो तो मिलना कम हो जायेगा और जो है वह भी परेशानी पैदा कर देगा।

जो जीवन में यज्ञार्थ कार्य करते हैं उनकी योग्यताएँ निखरती हैं। नया-नया परमात्मरस उनके द्वारा बहता रहता है। लेकिन जो अपने स्वार्थ हेतु, बाहर का सुख, बाहर की वाहवाही के लिए, धन के लिए, अहं पोसने के लिए, राग-द्वेष के लिए, मोह के लिए कर्म करते हैं वे अपने आपको सीमित कर देते हैं।

प्रकृति के मूल में देखा जाय तो उदारता और स्नेह भरा है। ऐसा कौन-सा हमारा पुरुषार्थ है कि हम परमात्मा का साक्षात्कार कर सकें ? यह परमात्मा की उदारता है कि हमें मनुष्य जन्म मिला है और बढ़िया बुद्धि मिली है। यह भी उदारता है उस परमात्मा की कि हम में श्रद्धा के साथ विवेक है। यह भी उसीकी उदारता है कि हम सत्संग में जा सकते हैं, सत्संग सुनकर उसका मनन कर सकते हैं और मनन करते-करते हम यज्ञार्थ कर्म में आगे बढ़ सकते हैं। यह भी उसीकी उदारता है कि एक दिन वह वह नहीं रहता और हम हम नहीं बचते, दोनों एक हो जाते हैं।

यदि यह जीव स्वार्थ से प्रेरित हल्के कर्म करता

है तो निम्न योनियों - कीट, पतंग, वृक्ष आदि को प्राप्त कर दुःख सहता है किन्तु यदि वह **'बहुजनहिताय-बहुजन सुखाय'** प्रवृत्ति करता है तो उसे सर्वेश्वर की सत्ता, स्फूर्ति, बल, बुद्धि, ओज, तन्दुरुस्ती मिलती है तथा समझ बढ़ती है। अगर स्वार्थ में आ गये तो बुद्धि संकीर्ण हो जाती है।

इस प्रकार जो जीव यज्ञार्थ कर्म करता है उसको यज्ञपुरुष अन्तर्यामी परमात्मा और अधिक योग्यताएँ देता है और जो यज्ञार्थ कर्म नहीं करता उसकी अपनी शक्ति भी क्षीण हो जाती है।

यज्ञार्थ कर्म करने से पूर्व कर्त्ता के अन्दर उत्साह होना चाहिए कि यह सेवाकार्य मेरे को करना है। जबरन कहना न पड़े कि 'सेवा करो।' ऐसा भी नहीं कि 'मैं सेवा कर रहा हूँ, तुम सहयोग दो।' सेवा के नाम से धन एकत्र करके उसका दुरुपयोग करें यह यज्ञार्थ कर्म नहीं है। यज्ञार्थ कर्म अपनेसे, दान अपने घर से और सेवा अपने शरीर से शुरू होती है। जो लोग महल बना लेते हैं, परदेश में धन इकट्ठा कर लेते हैं और चिल्लाते रहते हैं कि 'हम सेवा कर रहे हैं तो यह सेवा नहीं, राष्ट्र को धोखा देना है।

सचमुच में अगर आपका कर्म सेवा है तो रात को नींद बढ़िया आयेगी, परमात्मा के ध्यान में रुचि हो जायेगी। सचमुच में अगर सेवा है तो परमात्मस्वरूप में स्थिति हो जाएगी तथा वह कर्म कर्म नहीं रहेगा बल्कि ईश्वर से मिलानेवाला कर्मयोग बन जाएगा।

कर्त्ता को कर्म ऐसा करना चाहिए कि कर्म करने की वासना पूरी हो जाय। कर्त्ता को जीवन ऐसा जीना चाहिए कि जन्म-मरण से पार हो जाय। स्वार्थपूर्ण कर्म, अहंकारपूर्ण कर्म मनुष्य को अशांत कर देता है और यज्ञार्थ कर्म मनुष्य को परमात्मा के साथ मिला देता है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।

'हे अर्जुन! तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभाँति कर्त्तव्य कर्म कर।'

*

परम तत्त्व में विश्रान्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

इन्द्रियाँ, मन और विषयों के संयोग से जो भी सुख मिलता है वह वास्तव में आपके दुःख को दूर नहीं कर सकता।

भगवान कहते हैं : 'जो सुख नित्य है, प्रकाश-स्वरूप है, व्यापक है वह वास्तविक सुख है।'

जैसे स्वप्न बुद्धि द्वारा कल्पित होने से स्वप्न का सुख वास्तविक सुख नहीं है, मिथ्या है वैसे ही शोक, मोह, सुख, दुःख तथा संसार भी माया से बुद्धि द्वारा कल्पित होने के कारण वास्तविक नहीं है, मिथ्या है।

संसार मिथ्या है अतः देह भी मिथ्या है। बुद्धि भी माया से स्फुरित है इसलिए बुद्धि में जो शोक, दुःख चिंता आदि उपजते हैं वे सब भी मिथ्या हैं। इस प्रकार के वेदान्ती विचार जब तक आपके जीवन में नहीं आयेंगे तब तक दुनिया के सब मित्र मिलकर भी सदा के लिए आपके दुःख दूर नहीं कर सकेंगे। किन्तु यदि आपके जीवन में वेदान्त-निष्ठा है तो दुनिया के सब लोग आपके शत्रु बनकर आपको दुःख देना चाहें फिर भी वे आपके असली स्वरूप का, आत्मस्वरूप का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

...तो दुःख वास्तविक नहीं है, माया है। माया को माया समझा जाये तो फिर जगत का अस्तित्व नहीं रहता। जैसे, रस्सी को रस्सी ही जान लिया तो साँप गायब हो जाता है। मरुभूमि को मरुभूमि जान लिया तो पानी गायब हो जाता है।

जैसे, एक ही मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बनते

हैं, एक ही स्वर्ण से अनेक प्रकार के आभूषण बनते हैं वैसे ही एक ही सच्चिदानंद परब्रह्म परमात्मा से बुद्धि में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ होती हैं । मनुष्य को अपना पुत्र बहुत प्यारा लगता है। पुत्र से प्यारा अपना शरीर लगता है। शरीर से प्यारी इन्द्रियाँ लगती हैं और बाह्य इन्द्रियों से भी मन प्यारा लगता है। इस प्रकार जो वस्तु जितनी अधिक करीब होती है वह उतनी ही अधिक प्यारी लगती है। यही कारण है कि सिर पर चोट लगते वक्त हाथ तुरंत ही प्रतिकार करके सिर को बचाने की चेष्टा करने लगते हैं क्योंकि मनः वृत्ति एवं बुद्धि वृत्ति हाथ की अपेक्षा भी अधिक निकट होने के कारण अधिक प्रिय है किन्तु इससे भी अधिक मनुष्य को प्राण प्यारे हैं और प्राणों से भी अधिक अपना आपा, सुखस्वरूप आत्मा प्रिय है। इसीलिए जब मनुष्य बेचैन होता है, अशांत होता है तो प्राणों का भी त्याग कर देता है, अपनी देह का भी घात कर देता है लेकिन अपने सुखस्वरूप का घात नहीं करता क्योंकि अपना आपा, अपना मूलस्वरूप, आत्मस्वरूप सभीको प्यारा है किन्तु बेवकूफी के कारण ही मनुष्य माया में फँसकर दुःख पाता है।

हम लोगों का चित्त विषयों में जाता है इसीलिए विषय हम पर प्रभाव डालते हैं। जन्म-जन्मांतरों से चित्त की विषयासक्ति की आदत बन गई है इसलिए चित्त चैतन्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में स्थिति नहीं पाता।

एक बार सनकादि ऋषियों ने ब्रह्माजी से यह बात पूछी थी कि : ''आँखें देखने के लिए खिंच जाती हैं, कान बाहर का सुनने के लिए खिंच जाते हैं, जीभ स्वाद लेने के लिए उत्सुक हो जाती है, नाक सूँघने के लिए बेचैन रहती है। इस प्रकार विषय जीवों को खींचते ही रहते हैं तो मुक्ति पाना हो तो कैसे पाएँ ? इस जन्म-मरण के चक्कर से कैसे छूटा जाए ? अपने चैतन्य-स्वरूप परमात्मा में विश्रांति कैसे पायी जाए ?''

तब ब्रह्माजी ने भगवान आदिनारायण का आह्वान किया। सनकादि ऋषियों ने पूछा :

''हंसरूप में विराजमान आप कौन हैं ?''

तब हंसावतार भगवान ने कहा : ''तुम्हारा प्रश्न ही निरर्थक है कि 'मैं कौन हूँ।' शरीर की दृष्टि से देखा जाय तो जैसे पाँच भूत तुम हो वैसे ही मैं हूँ। तत्त्वदृष्टि से देखा जाय तो भी जैसे तुम हो वैसे मैं हूँ।''

यह सुनकर सनकादि ऋषियों ने हंसावतार भगवान से ब्रह्मविद्या संबंधी प्रश्न पूछा।

हंसावतार भगवान ने कहा :

''यह जो दृश्यमान जगत है, आँखों से जो दिखता है वह सब मायामात्र है, देखनेभर को है। इस माया को सत्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह क्षण-क्षण में बदलती है और इसे असत्य भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसके द्वारा व्यवहार होता है। इसलिए यह माया मिथ्या है। यह जगत माया के द्वारा दिखता है। जो अपने सत्यस्वरूप का चिंतन नहीं करता और इसको सत्य मानता है, मिथ्या देह को 'मैं' मानता है, इन्द्रियों के भोग में सहमत हो जाता है उसकी इन्द्रियाँ बलवान हो जाती हैं और उसके लिए बंधन का कारण हो जाती हैं। लेकिन जो बार-बार संसार के मिथ्यात्व का चिंतन करता है, अपने साक्षीस्वरूप चैतन्य में आनंद पाने की चेष्टा करता है, संयोगजन्य स्थिति (देह) में जिसकी ममता नहीं है, अहंता नहीं है वह परम पद को पाता है।''

इस प्रकार हंसावतार में भगवान ने तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया।

नरसिंह मेहता ने भी कहा है :

ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहीं,
त्यां लगी साधना सर्व जूठी।

आप चाहे कितने भी व्रत, उपवास कर लो, तीर्थयात्राएँ कर लो पर जब तक जीवन में आत्मज्ञान की ज्योति नहीं जगी तब तक बाह्य साधना को व्यर्थ ही जानो।

श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण में श्री वशिष्ठजी महाराज श्री रामचंद्रजी से कहते हैं : ''हे रामजी ! जैसा भोजन मिले वैसा खा ले, जैसे कपड़े मिले वैसे पहन ले, जहाँ सोने की जगह मिल जाए वहाँ सो ले परंतु ब्रह्मज्ञान का सत्संग मिलता हो तो वह सर्वश्रेष्ठ है।''

भक्त होकर मंजीरे बजा लिये, तपी होकर तप कर लिया, जपी होकर जप कर लिया, विद्यार्थी होकर

विद्याध्ययन कर लिया, कुछ बनकर कुछ पा लिया लेकिन जब तक ब्रह्मज्ञान को नहीं जाना तब तक सब कुछ जाना हुआ भी अंत में व्यर्थ हो जाता है।

जिसमें आपकी आसक्ति होती है वह आपसे छीन लिया जाय और जो आपको नहीं चाहिए वह मिल जाय तो समझ लेना कि भगवान की कृपा हो रही है।

उड़िया बाबा का एक शिष्य ध्यान, भजन, साधना में रुचि रखता था। एक बार वह आँखें बंद करके बैठा था। तब उसे उड़िया बाबा ने ध्यान से एकदम से जगा दिया और कहा :

''बेवकूफ, आँखें बंद करके बैठा है ! क्या तेरा भगवान आँखें खोलने से भाग जाता है ? चल उठ, सेवा कर। खेत में हल चला।''

दूसरा शिष्य खेत में हल चला रहा था, उससे कहा :

''हल ही चलाना था तो घर में क्या बुरा था ? चल, जा ध्यान-भजन कर।''

किसीने संत से पूछा : ''बाबाजी ! एक का ध्यान का विषय था, दूसरे का हल का विषय था। दोनों ठीक जगह पर ही थे। उन्हें आपने विपरीत कार्य क्यों दे दिया ?''

बाबाजी : '' जिसको जिस विषय में मजा आता है और वह उसे मिलता है तो वह आत्मा के आनंद से वंचित रह जाता है। मुझे उनसे हल नहीं चलवाना है या ध्यान नहीं करवाना है अपितु उनको स्वस्वरूप में जगाना है।''

वस्तु के प्रति ममता या आसक्ति साधना में विक्षेपरूप बनती है। इसीलिए तीर्थयात्रा में लोग प्रिय पदार्थ को त्यागने का संकल्प लेते हैं। पदार्थों के प्रति रुचि ही बुद्धि को बहिर्मुख बनाती है।

जिसके जीवन में कोई दृढ़ नियम नहीं है उसका मन उसे धोखा दे देता है। जिसके जीवन में कोई पकड़ नहीं होती वह या तो आत्मज्ञानी है या बेवकूफ है। साधक को तो कोई-न-कोई नियम बनाना ही चाहिए। इससे बुद्धि अंतर्मुख रहेगी। बुद्धि जब विषयों की ओर भागती है तब बहिर्मुख हो जाती है और अंतर्मुख होती है तो वह चैतन्य की शरण हो जाती है।

वास्तव में जो श्रीकृष्ण का आत्मा है वही आपका आत्मा है। जो राम, बुद्ध, महावीर का आत्मा है वही आपका आत्मा है। आप इतने महान् हो कि आपका वर्णन करने के लिए खुद सरस्वतीजी आ जायें तो भी थक जायें। लेकिन आज आप दो रोटी के लिए परेशान हो जाते हो। किसीके दो कटु वचन आपको परेशान कर देते हैं, जरा-जरा-सी बात में चिंता हो जाती है क्योंकि **'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'** इस कथन को पचाया नहीं है।

जिस समय वृत्ति में जैसा आता है उस समय वैसा ही दिखता है। **जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि।** जगत का बाह्य व्यवहार जैसा होगा उस समय दर्शक को वैसा ही लगेगा। भागवतकार लिखते हैं कि गोपियों को श्रीकृष्ण नटखट बंसीधर लगे। योगियों को श्रीकृष्ण अपनी आत्मा लगे। वेदान्तियों को श्रीकृष्ण ब्रह्मरूप दिखे। कंस को श्रीकृष्ण काल रूप में दिखे। पहलवानों को वे मल्ल के रूप में दिखे और अक्रूर को अपने इष्ट के रूप में दिखाई दिये। जिनकी जैसी योग्यता थी, जैसी दृष्टि थी उनको श्रीकृष्ण वैसे ही नजर आये। ऐसे ही बुद्धि में जिस समय जिस गुण का प्रभाव गहरा होता है उस समय जगत वैसा ही दिखता है। जो जगत को सत्य मानकर, देह को 'मैं' मानकर चलते हैं वे संसार में घटीयंत्र की नाईं घूमते ही रहते हैं लेकिन बुद्धि को जहाँ से प्रकाश मिलता है उस प्रकाशस्वरूप परम तत्त्व का विचार जिन्होंने किया है वे संसार के मिथ्या व्यवहार से प्रभावित नहीं होते हैं।

संसार को मिटाना नहीं है और भगवान को पाना नहीं है परंतु बुद्धि से बेवकूफी मिटानी है और बुद्धि को परमात्मा में प्रतिष्ठित करना है। परमात्मा आपसे दूर नहीं है और आप परमात्मा से दूर नहीं हो। यह सब केवल बुद्धि का दोष मात्र है। पक्षियों की उड़ान, कोयल की टहुँकार, स्त्री की नखराली चाल आदि प्रेम का विस्तार है। जिसने जिस-जिस साधन से प्रेम किया...

हकीकत में वह प्रेमस्वरूप स्वयं ही है लेकिन बुद्धि वृत्ति गुणों से आक्रांत है जिससे 'ऐसा करूँ तो सुखी

होऊँगा... वैसा करूँ तो सुखी होऊँगा...' इस प्रकार बुद्धि अपने आपको, अपने अमूल्य जीवन को खपा देती है।

राजा ययाति ने ऋषि से ऐसा वरदान ले लिया था, जिसके अनुसार वह अपनी वृद्धावस्था जिसको देना चाहे उसे देकर उसकी युवावस्था ले सकता था। राजा ययाति के पाँच पुत्र हुए थे। ययाति ने अपने पहले पुत्र से उसकी यौवन अवस्था माँगी परंतु उसने इन्कार कर दिया। दूसरे पुत्र ने भी इन्कार कर दिया। इस प्रकार चारों पुत्रों ने जब ययाति की माँग को अस्वीकार कर दिया तब पाँचवें पुत्र पुरु से ययाति ने कहा :

''अपनी जवानी मुझको दे दे और मेरा बुढ़ापा तू ले ले । संसार के भोगों से अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है।''

छोटा पुत्र : ''यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपको कुछ दे सकता हूँ।''

इस प्रकार ययाति की आज्ञा को स्वार्थी और भोगी पुत्रों ने अस्वीकार कर दिया एवं संयमी, सदाचारी सेवकभाव से संपन्न छोटे पुत्र ने स्वीकार कर लिया।

कथा कहती है कि बेटे की युवावस्था लेकर ययाति ने हजार वर्ष तक भोग भोगे लेकिन वह तृप्त न हो सका। आखिर ययाति ने संकल्प से पुनः बुढ़ापा स्वीकार करके पुत्र को उसकी जवानी लौटा दी और स्वयं तप करने चला गया। ऐसा कोई भोग नहीं है जो भोक्ता को शांति दे सके। ऐसा कोई बाहर का सुख नहीं है जो सुख लेनेवाले को परेशानी न दे। यह बात जब तक समझ में नहीं आती तब तक इन्सान सुखस्वरूप आत्मा में अंतर्मुख नहीं हो सकता। मिथ्या जगत को सत्य माननेवाला व्यक्ति कितनी भी ऊँची पदवी पर पहुँच जाए फिर भी अंदर से परम शांति नहीं पा सकता है।

दुनिया के जो मजे हैं, हरगिज कम न होंगे।
चर्चे यहीं रहेंगे, अफसोस ! हम न होंगे॥

कर्त्ता की मृत्यु के बाद कर्त्तव्य निभाने का सुख-दुःख, हर्ष-शोक, प्राप्ति-अप्राप्ति इत्यादि सब समय की धारा में बह जाता है। भाई ने भाई के साथ, पिता ने पुत्र के साथ, सेठ ने नौकर के साथ, न्यायाधीश ने वकीलों के साथ कर्त्तव्य निभाया। कर्त्ता ने सबके साथ कर्त्तव्य निभाये परन्तु यदि अपने मूलस्वरूप को खोजने का मुख्य कर्त्तव्य नहीं निभाया तो वह मानव अंत में बेचारा ठन-ठनपाल रह जाता है। अतः जल्दी ही अपने मुख्य कर्त्तव्य, अपने स्वस्वरूप में विश्रांति पाने की यात्रा का आरंभ कर देना चाहिए।

जेरे-गर्दू उम्र अपनी दिन-ब-दिन कटती गई।
जिस कदर बढ़ते गये हम, जिन्दगी घटती गई॥

घट-घटकर जिन्दगी गुजर जाए उसके पहले जीवनदाता से मुलाकात कर जीवन्मुक्त अवस्था में प्रतिष्ठित हो जाओ यही मानव जीवन का परम फल है।

*

हरि ॐ शिवोऽहं गाता जा...

जो राह दिखाता है जग को,
तू उसका पता बताता जा।
हरि ॐ शिवोऽहं गाता जा...
बिन देखे जो प्यारा लगता,
रट उसकी सदा लगाता जा।
अपने प्रियतम की मूरत से,
मन मंदिर सदा सजाता जा।
है लगन लगी जिसकी मन में,
लौ उसकी ओर बढ़ाता जा।
भक्तों को ही भगवान समझ,
चरणों की धूल रमाता जा।
ईसा नानक अल्लाह रघुवर,
तू सबको ही अपनाता जा।
हर जीव अंश है उसी प्रभु का,
तू सबको शीष झुकाता जा।
भूले भटकों को साथ लिए,
भजनामृत उन्हें सुनाता जा।
मानव तन तुझे दिया जिसने,
तू उसके ही गुण गाता जा।

- कृपाशंकर अग्निहोत्री

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मनुष्य की मति अगर सन्मार्ग में चलती है तो उसे सुमति बोलते हैं। यदि मति कुमार्ग में चलती है तो उसे कुमति बोलते हैं। मति सन्मार्ग में चले और सत्संग न मिले तो वह मति फिर कभी कुमार्ग में भी आ सकती है। सुमार्ग पर चले और सत्संग मिलता रहे तो वह मति सुमति होती है और सुमति को सत्संग मिले तो वह साधनमति हो जाती है, मेधा हो जाती है।

उस मेधा से शास्त्र निकलता है। उस मेधा से दिव्य ज्ञान प्रकट होता है। वेदव्यासजी ने समाधि लगायी जिससे उनकी मति मेधा बनी और उन्होंने शास्त्र लिखे। नानकजी जो बोले वह शास्त्र बन गया, लीलाशाहजी बापू जो बोले वह शास्त्र बन गया, एकनाथजी जो बोले वह शास्त्र बन गया, याज्ञवल्क्यजी जो बोले वह 'मैत्रेयी उपनिषद्' बन गया।

सुमति जब ध्यान-धारणा करके अंतर्मुख बनती है, परमात्मरस लेती है तब मेधा बनती है। अगर मति को ब्रह्मज्ञान मिल जाय, वह सत्पद में टिकने लग जाय तो फिर वह मति न सुमति रहती है, न कुमति हो सकती है और न मेधा रहती है। वह तो ऋतम्भरा प्रज्ञा बन जाती है। ऋत् माना सत्य, परब्रह्म परमात्मा।

एक होता है सत् और दूसरा होता है सच। जैसे, यह लाईट का बल्ब है। यह बात सच है मगर सत् नहीं है। यह लाईट तो चार दिन बाद रहेगी कि न रहेगी कोई ठिकाना नहीं।

जब सृष्टि नहीं थी तब भी जो था, सृष्टि है तब भी जो है और प्रलय होने के बाद भी जो रहेगा, उसको कहते हैं सत्।

आद सत् जुगाद सत्
है भी सत् नानक होसे भी सत्।

सत्संग के प्रभाव से उस सत्स्वरूप आत्मा में बुद्धि टिकने लग जाती है तब आदमी की मति ऋतम्भरा प्रज्ञा हो जाती है। जनक की मति ऋतम्भरा प्रज्ञा थी। जिसकी मति उस सत्य में टिकती है वह महान् हो जाता है। फिर उसका शरीर चाहे छोटा हो, जाति छोटी हो, कुल छोटा हो, उम्र छोटी हो तो भी क्या ?

बारह वर्ष के अष्टावक्र। काली काया, नाटा कद, टेढ़ी टाँगें एवं शरीर में आठ वक्रताएँ हैं। फिर भी विशाल काया, विशाल राज्य और विशाल मतिवाले राजा जनक अपना ताज उनके चरणों में रखते हैं और कहते हैं : '' हे भगवन्! मुझे आत्मज्ञान दीजिए। मुझे अपना शिष्य बनाइए। जन्मों के भटके को अब सही रास्ते लगाइये।''

राजा जनक उनके शिष्य हुए हैं। बारह वर्ष के तो गुरु हैं और विशाल राज्य के धनी, बड़ी उम्र के राजा जनक उनके शिष्य हैं। यह सत्संग की बलिहारी है ! आपके शरीर का वर्ण चाहे कैसा भी हो, काया कैसी भी हो, बड़ी हो या छोटी हो लेकिन आपके अंदर जो परमात्मा है वह तो पूर्ण का पूर्ण है। इसीलिए ऋषि कहते हैं :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

जिनको सत्संग मिल जाता है, मानो उनको जन्मों के सत्कर्मों का फल मिला है। जब हरि में हमारा प्रेम होने लगता है तब कलियुग की ताकत नहीं, पापों की ताकत नहीं हमारे दिल में ठहरने की।

तुलसीदासजी कहते हैं :

तुलसी पूर्व के पाप से हरिचर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के जोर से भूख विदा हो जाय॥

जिसने बहुत पाप किये हैं उसे हरिचर्चा सुनने में रुचि नहीं होती है। वह सत्संग में नहीं जा सकता है। अगर पाप कम हैं या पुण्य जोर मारते हैं तभी

हरिकथा सुनता है । कथा सुनता है या सत्संग में बैठता है तो उठने की इच्छा नहीं होगी । अगर उठने की इच्छा हो रही है तो समझो कि पाप जोर मार रहे हैं... सत्संग सुनते-सुनते पाप क्षीण होने लगते हैं ।

स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते ।

जिसके स्वल्प पुण्य होते हैं उसको तो सत्संग में, महापुरुषों के वचनों में विश्वास ही नहीं होता ।

सो साहब सद सदाँ हजूरे ।
अंधा जानत ताँको दूरे ॥

गुरुवाणी बोलती है :

हाजरां हजूर, जागंदी ज्योत, आद सत्,
जुगाद सत् है भी सत् नानक ! हो से भी सत् ॥

विश्व का नियंता आपके दिल में है और आप दो पैसों के लिए अपनी जिन्दगी बेच रहे हैं ? किसीसे पूछो कि : 'क्या काम करते हो ?' उत्तर मिलेगा कि : 'कपड़ा बेचता हूँ... लकड़ा बेचता हूँ... दूध बेचता हूँ... सब्जी बेचता हूँ... फ्रूट बेचता हूँ...'

एक आदमी ने कहा : ''बाबाजी ! हम न सब्जी बेचते हैं, न लकड़ा बेचते हैं और न फ्रूट बेचते हैं । दो पैसों के लिए हम अपनी जिन्दगी बेच रहे हैं...''

वह जमाना था, जब राजा राजपाट छोड़कर गुरुओं को खोजते थे और सत्संग सुनते थे । बारह-बारह साल तक सिर में खाक डालकर, हाथ में काँसा लिए भिक्षा ले आते थे । गुरुओं को रिझाते थे कि कहीं रहमत हो जाय और अनुभववाणी के दो वचन मिल जायें और अब... दिन-रात संत-महापुरुष सत्संग सुना रहे हैं, फिर भी तड़प नहीं जगती, तत्परता नहीं होती । अगर उस अंतर्यामी रब को पाने की सच्ची तड़प जग जाए एवं तत्परता तथा ईमानदारीपूर्वक उसे पाने में लग जायें तो संतों- महात्माओं का परमात्मिक अनुभव हमारा अनुभव बन जाये...

एक दिन स्वामी श्री रामसुखदासजी से एक भक्त ने प्रश्न किया :

''आपको आध्यात्मिक लाभ कैसे हुआ ?''

स्वामीजी ने प्रत्युत्तर दिया :

''मुझे तो सत्संग से लाभ हुआ है । मैं साधन को इतना महत्त्व नहीं देता जितना सत्संग को देता हूँ । दूसरों के लिये भी मैं समझता हूँ कि अगर मन लगाकर, गहरे उतरकर सत्संग की बातें समझें तो उनको बहुत लाभ हो सकता है । एक विशेष बात कह देता हूँ कि अगर आप सत्संग को महत्त्व दें और गहरे उतरकर उसको समझें तो मुझे जितने वर्ष लगे उतने वर्ष आपको नहीं लगेंगे । बहुत जल्दी आपकी उन्नति होगी ऐसा मेरे को स्पष्ट दिखता है । मेरे को सन्देह नहीं है इस बात पर । इस विषय में मैं आपको अयोग्य या अनधिकारी नहीं मानता हूँ । आपमें जो कमी है उस कमी को दूर करने की सामर्थ्य आपमें पर्याप्त है । मेरी धारणा में आपमें केवल इस विषय की उत्कंठा की कमी है । वह उत्कंठा जाग्रत हो जाय तो आप पापी-से-पापी हों, मूर्ख-से-मूर्ख हों और आपके पास थोड़ा-से-थोड़ा समय हो तो भी आपका उद्धार हो सकता है । उत्कंठा जाग्रत होगी संसार की लगन का त्याग करने से ।

कबीरा मनुआँ एक है, भावे जहाँ लगाय ।
भावे हरि की भगति कर, भावे विषय कमाय ॥

सांसारिक संग्रह और भोगों में जो लगन लगी है उसको मिटा दो तो परमात्म-प्राप्ति की सच्ची लगन लग जायगी । 'इतना रूपया हो गया, इतना और हो जाय, इतना सुख भोग लें, ऐश-आराम कर लें, मान मिल जाय, बड़ाई मिल जाय, नीरोगता मिल जाय, समाज में मेरा ऊँचा स्थान हो जाय, हम ऐसे बन जायें...' ये जितनी इच्छाएँ हैं इनका त्याग कर दो तो आपको सच्ची लगन लग जायगी । जितनी लगन लगनी चाहिए उतनी नहीं लग रही है तो इसका कारण यह है कि जितना त्याग होना चाहिये उतना नहीं हो रहा है । त्याग क्या है ? गीता ने इच्छा के त्याग को ही 'त्याग' कहा है ।

मंत्रदीक्षा के अनन्तर मंत्रजप को छोड़ देना घोर अपराध है । इससे मंत्र का घोर अपमान होता है तथा साधक को हानि होने की संभावना भी रहती है ।
- स्वामी शिवानन्दजी
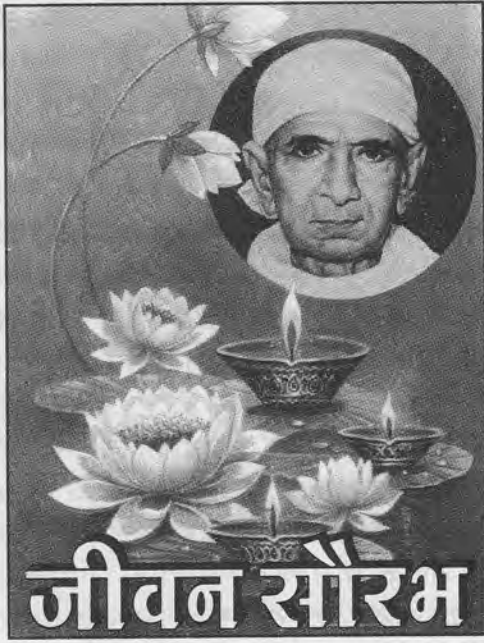
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

(गतांक का शेष)

एक बार संत लीलाराम किसी गाँव में जा रहे थे तब एक गरीब स्त्री अपने मृतक पुत्र को रास्ते में रखकर दूर बैठकर रो रही थी। इस बालक को अचानक रास्ते में सोये हुए देखकर संत लीलाराम के श्रीमुख से एकाएक निकल पड़ा :

''बेटा ! बेटा ! उठ, उठ।''

संत लीलाराम के वचन सुनकर वह मृतक बालक तुरंत उठ खड़ा हुआ और जाकर संत लीलाराम के चरणों में जा गिरा। वह स्त्री तो यह दैवी चमत्कार देखकर दौड़ती-दौड़ती आयी और संत लीलाराम के पैरों पड़कर खूब-खूब आभार मानने लगी। यह देखकर संत लीलाराम उस स्त्री से प्रार्थना करने लगे :

''माँ ! मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि यह बात तू किसीसे न कहना।''

परंतु सत्य कहाँ तक छुप सकता है ?

तप करे पाताल में, प्रगट होय आकाश।
रज्जब तीनों लोक में, छिपे न हरि का दास ।।

थोड़े ही समय में गाँव के लोगों को इस चमत्कार का पता चल गया। 'लोगों को इस बात का पता चल गया है'- यह जानते ही संत लीलाराम तुरंत उस गाँव को छोड़कर चल पड़े...

संत-समागम

आत्म-साक्षात्कार के बाद पूज्य लीलारामजी महाराज केवल एक ही स्थान पर न रहे, वरन् जंगलों, पर्वतों एवं तीर्थस्थानों में भ्रमण करते रहे। उत्तर भारत के पहाड़ों पर उन्होंने अनेकों उच्च कोटि के संतों, महात्माओं, सिद्ध पुरुषों एवं तपस्वियों का संग किया। पाँचवें सिक्ख गुरु अर्जुनदेव ने संत-महात्माओं के संग एवं महिमा का सुंदर वर्णन करते हुए कहा है :

साधकै संगि मुख उजल होत।
साधकै संगि मलु सगली खोत ।।
साधकै संगि मिटै अभिमानु।
साधकै संगि प्रगटै सुगिआनु ।।
साधकी महिमा बरनै कउनु प्रानी।
नानक ! साधकी सोभा प्रभु माहि समानी ।।

'सत्पुरुषों के संग से मुख तेजस्वी होता है, सब (दुर्गुणरूपी) मल धुल जाते हैं। सत्पुरुष के संग से अभिमान दूर हो जाता है एवं सच्चा ज्ञान प्रगट होता है। सत्पुरुषों की महिमा को कौन बखान सकता है ? नानकजी कहते हैं कि सत्पुरुषों की स्तुति प्रभु की स्तुति के समान है।'

पूज्य लीलारामजी बापू के जीवन में संत-समागम की महत्ता का बड़ा ऊँचा स्थान है। जहाँ कोई संत, महात्मा दिखे कि वे उनका संग अवश्य करते। उन्होंने बाल्यकाल से किसी लौकिक विद्या का अध्ययन नहीं किया था, किन्तु साधु-संतों के संग से अपने जीवन में ज्ञान की ऐसी ज्योति जगाई थी जिससे वे जगत के उद्धारक पूजनीय महापुरुष बन गये। वे स्वयं कहते थे :

''साधु का संग मनुष्य को जस्ते में से सोना बनाता है। साधु कोई आकाश में से नहीं उतरते परंतु

संतों के संग एवं उनके द्वारा लिखे गये सत्शास्त्रों के अभ्यास से मनुष्य साधु बनता है।''

वे स्वयं भी संतों के संग में रंगकर लाल (रत्न) बन गये थे। कितने ही वर्षों तक उन्होंने हरिद्वार, हृषिकेश, उत्तरकाशी, हिमालय की गुफाओं, कश्मीर, तिब्बत वगैरह स्थलों पर भ्रमण करके संत-समागम से वेदान्त एवं यौगिक क्रियाओं का खूब गहराई से अभ्यास किया था। वे संपूर्ण सिद्धियों को प्राप्त करके योगीराज बने। योगदर्शन में जिन आठ सिद्धियों का वर्णन आता है उनमें से एक भी सिद्धि ऐसी न थी, जो उन्होंने सिद्ध न की हो। इसलिए उनके भक्त उन्हें **'कामिल गुरु'** अथवा **'चमत्कारों के मालिक'** कहा करते थे। गुरु नानक, संत ज्ञानेश्वर, कबीरजी, तुकारामजी, एकनाथजी महाराज जैसे असंख्य महान् संतों के जीवन भी ऐसे चमत्कारों से पूर्ण थे।

संत लीलाराम से लीलाशाहजी महाराज

सच्चे संत अर्थात् परमात्मा के प्रचंड सामर्थ्य का भण्डार... उनका संकल्पबल क्या नहीं कर सकता है ? इस संदर्भ के अनगिनत उदाहरण हमें वेद-शास्त्र एवं पुराणों में देखने को मिलते हैं। सच्चा हीरा कब तक छुपा रह सकता है ? संत लीलाराम के दैवी चमत्कारों से प्रभावित होकर लोग उन्हें संत लीलाराम नहीं, वरन् संत लीलाशाहजी के नाम से जानने लगे। यह नाम किस तरह पड़ा इस संदर्भ में अलग-अलग प्रसंगों का उल्लेख मिलता है :

जब संत लीलाराम जंगलों में जाकर रहते थे तब एक मुसलमान माली उन्हें रोज देखता था। उनके असाधारण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर माली के मन में होता कि 'इन साधु को कुछ खिलाऊँ।' परन्तु उसे मन-ही-मन शंका होती कि 'क्या पता, ये हिन्दू साधु मुसलमान के हाथ का कुछ खायेंगे कि नहीं ?' इस प्रकार कितने ही दिन बीत गये।

एक दिन वह मूली धो रहा था। इतने में तो वे साधु (लीलाराम) उसके आगे आकर खड़े हो गये एवं बोले :

''जो खिलाना हो, खिला। रोज-रोज सोचता रहता है तो आज अपनी इच्छा पूरी कर।''

वह मुसलमान माली तो आश्चर्यचकित हो उठा कि 'इन साधु को मेरे मन की बात का पता कैसे चला ?' वह तो एकदम संत लीलाराम के चरणों में मस्तक नवाकर कहने लगा :

''सचमुच, आप नूर इलाही हो। आप शाह हो, मुझे दुआ करो।''

ऐसा कहकर उसने दो मूली साफ करके, धोकर संत लीलाराम को दी। उन्होंने बड़े प्रेम से उन मूलियों को खाया। इस प्रकार उस मुसलमान माली ने संत लीलाराम को लीलाशाहजी के नाम से संबोधित किया।

पूज्य स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के कथनानुसार सद्गुरु केशवानंदजी ने कहा था :

''अब तू आध्यात्मिक मार्ग पर खूब आगे बढ़ चुका है, अतः तेरा नाम लीलाराम नहीं, 'लीलाशाह' रखते हैं।''

फिर वे उन्हें लीलाशाह के नाम से ही बुलाते थे।

लीलाराम जब बचपन में हंस निर्वाण आश्रम में स्वामी परमानंद के पास वेदान्त के ग्रंथों का अध्ययन करते थे तब उन्होंने लीलाराम से कहा था :

''तू शाह है और शाह बनेगा।''

दूसरी एक अलौकिक घटना के कारण भी उनका नाम 'लीलाशाह' पड़ा :

जब भारत-पाकिस्तान का विभाजन नहीं हुआ था, उन दिनों में किसी जमीन की बाबत में हिंदू एवं मुसलमानों के आगेवानों के बीच में तीस वर्ष से झगड़ा चल रहा था। हिंदू कहते कि 'यहाँ हमारा झुलेलाल का मंदिर था' और मुसलमान कहते कि 'यहाँ हमारी मस्जिद थी।'

उस समय अंग्रेजों का राज था। अंग्रेज चाहते थे कि हिंदू एवं मुसलमान भीतर-ही-भीतर लड़ते रहें। दोनों पक्ष कोर्ट में धक्के खा-खाकर थक गये। आखिरकार दोनों पक्षों ने विचार किया कि 'यह धार्मिक जगह है। हिंदू एवं मुसलमान दोनों धर्मों के

अग्रणी इकट्ठे हों। जिनके संत का प्रभाव ज्यादा हो उन्हीं की यह धार्मिक जमीन मानी जायेगी।'

उस जमीन पर एक नीम का वृक्ष था जिससे उस जमीन की सीमा निर्धारित होती थी। दोनों पक्षों ने अंत में ठहराव पास किया कि 'जिस पक्ष का कोई पीर-फकीर उस स्थान पर अपना कोई विशेष बल, तेज या कोई चमत्कार दिखा देगा उस पक्ष की ही वह जमीन होगी।'

तब हिंदू लोग पहुँचे पूज्य लीलारामजी के पास एवं बोले : ''हमारे तो आप ही एकमात्र संत हैं। हमारे से जो कुछ हो सकता था, वह सब हमने किया किन्तु निष्फल रहे। अब पूरे हिंदू समाज की इज्जत आपके हाथों में है। अब तो संत कहो या भगवान, आप ही हमारे एकमात्र आधार हो।''

संतों के पास अहंकार लेकर जानेवाले खाली हाथ ही लौटते हैं किन्तु विनम्र एवं श्रद्धालु लोग शरणागति के भाव से जाते हैं तो संत की करुणा कुछ देने के लिए जल्दी बरस पड़ती है।

आये हुए लोगों की प्रार्थना सुनकर पूज्यपाद लीलारामजी महाराज उस स्थल पर जाकर, जमीन पर दो घुटनों के बीच सिर रखकर बैठ गये। विपक्ष के लोगों ने उन्हें इस प्रकार सहज एवं सरल रूप से बैठे देखा तो उन्हें हुआ कि 'यह साधु क्या करेगा ? जीत तो हमारी ही होगी।'

पहले मुसलमान लोगों द्वारा आमंत्रित पीर-फकीरों ने मंत्र-तंत्र, जादू, टोने-टोटके वगैरह किये किन्तु कुछ न हुआ। फिर पूज्य लीलारामजी की बारी आयी।

पूज्य लीलारामजी बाहर से भले साधारण दिखते थे किन्तु उनके अंदर तो आत्मानंद हिलोरें ले रहा था... बाहर से कंगाल दिखते हुए भी भीतर से आत्ममस्ती में बैठे हुए संत जो बोलें उसे होने से कौन टाल सकता है ? उनके द्वारा कहे गये शब्दों को झेलने के लिए तो समग्र प्रकृति भी दासी बनकर निरंतर तैयार खड़ी रहती है। भगवान श्रीराम के गुरु वशिष्ठजी महाराज कहते हैं :

''हे रामजी ! त्रिलोकी में ऐसा कौन है जो संत की आज्ञा का उल्लंघन करके सुखी रह सके ?''

'श्रीरामचरितमानस' में भगवान शंकर माँ पार्वती से कहते हैं :

संत अवज्ञा सुनहुं भवानि जरहि भवन अनाथ की नाईं।

जब लोगों ने पूज्य लीलाराम से आग्रह किया तब उन्होंने अपने मस्तक को धीरे-से उठाया। सामने ही नीम का वृक्ष खड़ा था। उसके ऊपर दृष्टि डालकर, गर्जना करते हुए उन्होंने आदेश दिया :

''ऐ नीम ! यहाँ क्या खड़ा है ? जा, वहाँ जाकर खड़ा रह।''

बस, ऐसा कहते ही नीम का बड़ा-सा झाड़ सर्र... सर्र... करता खिसकने लगा एवं दूर जाकर खड़ा हो गया। यह देखकर लोग तो अवाक् रह गये। आज तक ऐसा चमत्कार किसीने नहीं देखा था। अब तो विपक्ष के लोग भी पूज्य लीलारामजी के पैरों पड़ने लगे। वे समझ गये कि पूज्य लीलारामजी कोई सिद्ध पुरुष हैं। उन्होंने हिन्दुओं से कहा :

''ये केवल आपके ही पीर नहीं हैं, परंतु आपके, हमारे और सभीके पीर हैं। आज से वे 'लीलाराम' नहीं परंतु 'लीलाशाह' हैं।''

तब से लोग उन्हें पूज्य लीलाशाहजी महाराज के नाम से जानने लगे।

सेवा-यज्ञ

किसी भी देश की सच्ची संपत्ति संतजन ही होते हैं। वे जिस समय प्रगट होते हैं उस समय के जन-समुदाय के लिए उनका जीवन ही सच्चा मार्गदर्शक होता है। जिस समय जिस धर्म की आवश्यकता होती है उसका आदर्श प्रस्तुत करने के लिए स्वयं भगवान ही तत्कालीन संतों के रूप में नित्य अवतार लेकर आविर्भूत होते हैं- ऐसा कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। वे भय एवं शोक, ईर्ष्या एवं उद्वेग की आग से तपे हुए समाज को सुख और शांति, स्नेह एवं सहानुभूति, सदाचार एवं संयम, साहस एवं उत्साह, शौर्य एवं क्षमा जैसे दिव्य गुण देकर, हृदय के अज्ञान-अंधकार को मिटाकर जीव को शिवस्वरूप बना देते हैं। (क्रमशः)

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

समय का लाभ उठायें

सत्युग में धर्म के चार चरण थे। त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलियुग में धर्म का एक ही चरण बाकी रह गया है। सत्युग गया तो सत् गया, त्रेता गया तो तप गया, द्वापर गया तो यज्ञ गया और...

दानं केवलं कलियुगे।

कलियुग में धर्म का दानरूपी एक ही चरण रह गया।

जिसके तीन पैर टूटे हुए हैं और जो एक पैर पर खड़ा है ऐसे धर्म के प्रतीकरूप बैल को एक शूद्र मार रहा था। राजा परीक्षित ने उसे देखा और कहा :

''हे दुष्ट ! तुम इसको क्यों मार रहे हो ?''

कलि : ''मैं कलि हूँ। मैं अपना काम कर रहा हूँ।''

परीक्षित : ''मैं तुम्हें यहाँ रहने नहीं दूँगा।''

छद्म वेशधारी कलि : ''महाराज ! आप प्रथम मेरे गुण-दोष सुन लें, तत्पश्चात् मुझे रहने देने या न रहने देने का निर्णय करियेगा।

परीक्षित : ''तुम्हारे अवगुण कौन-कौन-से हैं ?''

कलि : ''इस युग में धन हेतु भाई-भाई ही आपस में लड़ेंगे। लज्जा और मर्यादा में रहनेवाली स्त्रियाँ बहुत ही कम होंगी। मदिरापान व जुआ बहुत चलेंगे। गाय एवं बकरों का मांस खुलेआम बिकेगा। मनुष्य अल्पायु, अल्प बुद्धिवाले व अल्प विचार के होंगे। वे क्षण-क्षण में राजी और नाराज हो जाएँगे। जुआ, शराब, स्वर्ण व वेश्यागृह में मेरा अधिक वास रहेगा।''

परीक्षित ने धनुष उठाया और बोले : ''बस... बस, हद हो गई ! तुम्हारे प्रभाव से तो मानवीयता ही मिट जायेगी। मैं इसी वक्त तुम्हें नष्ट कर देता हूँ।''

इतने में कलि बोला :

''महाराज ! सुनिये, मेरा एक बड़ा भारी गुण भी है। सत्युग में बारह वर्ष जप, तप, उपवास, व्रत, धारणा, ध्यान, समाधि करने से जितना पुण्य मिलता था, अंतःकरण की स्थिति बनती थी, त्रेता और द्वापर में बारह मास के जप, तप, व्रत इत्यादि से जितना पुण्य मिलता था, कलियुग में केवल एक माला जपने से, १०८ बार भगवान का नाम जपने से उतना ही पुण्य होगा, महाराज !''

राजा परीक्षित ने अपने धनुष-बाण रख दिये। कलि आगे जाकर हँसने लगा। तब परीक्षित ने पूछा :

''क्यों हँस रहे हो ?''

कलि : ''एक माला भी मैं जपने दूँ तब न ? मैं १०८ बार भगवान का नाम-स्मरण भी नहीं करने दूँगा।''

हम भी यह अनुभव करते हैं कि गपशप में तो पता नहीं हजारों व्यर्थ शब्द बोलते रहते हैं परंतु जब माला घुमाने बैठते हैं तब मन इधर-उधर भागता रहता है, दौड़ता रहता है। किसीके जीवन में कोई व्रत-नियम हो और वह सुबह-शाम माला जप सकता है तो अच्छी बात है, नहीं तो कलियुग के मनुष्य को माला जपना भी कठिन लगता है।

संत कबीर घर के आँगन के पास एक चबूतरे पर बैठे थे। उन्होंने देखा कि चार-पाँच मजदूर उदास चेहरा लेकर जा रहे थे। कबीरजी तो संत थे। उनका हृदय दयालु था। उन्होंने मजदूरों को बुलाया और पूछा :

''तुम लोगों के चेहरे उदास क्यों हैं ?''

मजदूरों ने कहा : ''महाराज ! आज हमें कहीं भी कोई काम नहीं मिला। न कटाई का, न मजदूरी का। अब हम क्या खायेंगे ? हम लोग तो रोज कमाकर रोज खाते हैं।''

कबीरजी : ''चिंता मत करो। जिन परमात्मा ने

सबको जन्म दिया है वे ही सबके पोषक हैं । उनकी प्रेरणा से तुम लोग यहीं बैठ जाओ । खाना बन रहा है । खाने के बाद तुम्हें माला देंगे उससे जप करना। भोजन भी मिलेगा और पूरे दिन की जो तुम्हारी मजदूरी होती हो वह भी ले जाना ।''

मजदूर बहुत खुश हुए । साढ़े बारह बजे भोजन समाप्त हुआ। उसके बाद सबको माला दी गई। मजदूर सोचने लगे कि 'वाह ! राम-राम भी करेंगे और पूरे दिन की कमाई भी मिलेगी ।' आरम्भ में तो अच्छा लगा लेकिन एक-दो माला जपने के बाद ही जम्हाई आने लगी... झोंके आने लगे... इंतजार करने लगे कि कब सूर्यास्त होगा... बहुत ही तंग आ गए... काफी कठिनाई से शाम तक का समय बीता।

कबीरजी ने सबको एक दिन की मजदूरी जितने पैसे दिये और बोले :

''कल कहीं मजदूरी करने मत जाना । भोजन यहीं पर कर लेना और दोपहर को आओगे तो भी चलेगा। आधा दिन का काम, बदले में भोजन और पूरे पैसे मिलेंगे।''

तब मजदूरों ने कहा : ''बाबाजी ! इतनी दया मत करें । हम पत्थर तोड़ेंगे, घास काटेंगे, मजदूरी करेंगे लेकिन यह काम तो हमसे नहीं होगा।''

वे लोग बड़भागी हैं जो सत्संग करते हैं, कराते हैं या कराने में निमित्त बनते हैं अन्यथा भोजन देने पर, मजदूरी देने पर भी लोग नाम-जप नहीं कर सकते। यदि सच्चे हृदय से नाम-जप किया जाए तो जीवन में से कितनी ही मुसीबतें टल जाती हैं और अगर मुसीबत आ भी जाये तो हताशा-निराशा नहीं होती है। प्रत्येक मुसीबत कोई-न-कोई अच्छी सीख दे जाती है। जीवन में कोई मुसीबत आये तो समझ लें कि कुछ अच्छा होनेवाला है, शुभ होनेवाला है, भलाई होनेवाली है। जैसे गर्मी लगती है तब पसीने से तर-बतर हो जाते हैं और हाय... हाय... करते हैं। गर्मी अच्छी नहीं लगती परंतु यही गर्मी वर्षा की शीतलता लाती है और खेतों को हरा-भरा बनाती है । आँधी-तूफान चलते हैं तब परेशानी होती है, मन उद्विग्न हो जाता है, चेहरा सिकुड़ जाता है लेकिन वही आँधी-तूफान वायुमंडल को शुद्ध कर देता है। ऐसे ही जब किसी दुराचारी द्वारा, अहंकारी द्वारा समाज पर जुल्म और अत्याचार होते हैं तो समाज की सुषुप्त जीवनशक्ति जगाने का अवसर भी भगवान समाज को दे देते हैं। कड़वे-मीठे दिन सबके आते हैं लेकिन जीवन उसीका सार्थक है जो पुरुषार्थ करके आगे बढ़ता है।

जहाजों को जो डुबा दे,
उसे तूफान कहते हैं।
तूफान से जो टक्कर ले,
उसे इन्सान कहते हैं॥

*

समता की महिमा

सब प्रकार के तपों से समता अधिक मूल्यवान है। हिमालय में हजारों साल रहकर तपस्या करना, होम-हवन करना, दान-पुण्य करना, इन सबसे भी एक क्षण के लिए समत्व में स्थिति करना श्रेष्ठ है।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी महाराज और विश्वामित्रजी समकालीन संत थे। दोनों एक-दूसरे के पास आया-जाया करते थे। एक बार जब विश्वामित्रजी के पास वशिष्ठजी आये तो विश्वामित्रजी ने उनका आतिथ्य-सत्कार करते हुए भोजन कराया और दक्षिणा में कई वर्षों का तप अर्पण किया । फिर जब विश्वामित्रजी वशिष्ठजी महाराज के अतिथि हुए तब वशिष्ठजी ने उनका आतिथ्य-सत्कार करते हुए आधी घड़ी के सत्संग का फल विश्वामित्रजी को अर्पण किया । इससे विश्वामित्रजी क्रोधित हो गये और बोले :

''आप मुझे क्या समझते हैं ? मैंने आपको कई वर्षों की तपस्या अर्पित की किन्तु बदले में आप मुझे केवल आधी घड़ी के सत्संग का फल दे रहे हैं ? यह मेरा अपमान है।''

तब वशिष्ठजी ने कहा :

''महाराज ! अनेक वर्षों की तपस्या से आधी घड़ी का सत्संग बढ़कर है। सत्संग माने सत्यस्वरूप परमात्मा में स्थिति। सत्यस्वरूप परमात्मा में स्थिति ही समता है और समता होने से ही स्थिति होती है। जैसे नाविक नाव ले जाता है और नाव नाविक को ले

जाती है वैसे ही समता से स्थिति आती है और स्थिति से समता बढ़ती है।''

विश्वामित्रजी ने पुनः कहा :

''अनेक वर्षों की तपस्या आधी घड़ी के सत्संग से बढ़कर है।''

जबकि वशिष्ठजी महाराज आधी घड़ी के सत्संग को श्रेष्ठ बता रहे थे। अब दोनों ही उस समय के प्रसिद्ध संत थे। इन दोनों में समझौता कराना या न्याय देना यह पृथ्वीलोक के किसी मनुष्य के हाथ की बात न थी क्योंकि दोनों ही समर्थ थे। तब दोनों ने आपस में विचार-विमर्श करके कहा :

''हम आपस में लड़ें यह ठीक नहीं है। चलो, हम ब्रह्माजी के पास चलते हैं।''

दोनों विद्वान थे अतः चल पड़े ब्रह्माजी के पास। मूर्ख लोग आपस में लड़ मरते हैं किन्तु विद्वान उपाय खोजते हैं। थोड़ी-सी बातचीत या मतभेद होने पर मूर्ख लोग तो धारिया उठाते हैं, गोली चलाते हैं, लेकिन जो विद्वान होते हैं वे अपने से श्रेष्ठ की शरण खोजते हैं।

वे दोनों संत गये भगवान ब्रह्माजी के पास। ब्रह्माजी तो अंतर्यामी हैं। समझ गये कि दोनों ऋषि अपने मतभेद को लेकर आये हैं। अनेक वर्षों की तपस्या का फल बड़ा कि आधी घड़ी का सत्संग बड़ा ? ब्रह्माजी ने सोचा कि अब यदि कहूँगा कि आधी घड़ी का सत्संग बड़ा है तो विश्वामित्रजी नाराज हो जाएँगे और कहूँगा कि अनेक वर्ष का तप बड़ा है तो वशिष्ठजी के साथ अन्याय हो जाएगा। दोनों में से कोई भी नाराज हो जाये तो ठीक नहीं है।

आखिरकार उन्होंने एक युक्ति निकाल ली और बोले :

''हे ऋषिवर ! मैं अभी-अभी देवताओं और दैत्यों के झगड़े को निपटाकर सभा से आ रहा हूँ। अतः हो सकता है कि उत्तर देने में कुछ गड़बड़ी हो जाय। इसलिए अच्छा है कि आप भगवान विष्णु के पास जायें।''

वे दोनों ऋषि गए भगवान विष्णु के पास। तब विष्णुजी ने भी यही कहा :

''मैं भी अभी दैत्यों और देवताओं की सभा से ही आ रहा हूँ। मेरा दिमाग अभी उसीमें उलझा हुआ है। अतः उलझे हुए दिमाग से मैं उचित निर्णय कैसे दे सकता हूँ ? आप ऐसा करें कि शेषनाग के पास जायें। वे बड़ी शान्ति से बैठे हैं।''

शेष अर्थात् 'नेति... नेति... नेति...' करने के बाद जो बच जाये। उसीके आधार पर यह पृथ्वी खड़ी है। किन्तु स्थूल दृष्टि से कहना पड़ता है कि शेषनाग अपने फनों पर पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। दोनों ऋषिवर पहुँचे शेषनाग के पास और अपनी समस्या सामने रखी।

तब शेषनाग ने कहा : ''भाई ! मैं पृथ्वी को धारण कर-करके थक गया हूँ। मेरा सिर भारी हो गया है। अतः ऐसा करें कि इस पृथ्वी को आप लोग कुछ समय के लिए धारण कर लें तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे सकूँ।''

तब विश्वामित्रजी कहते हैं : ''हे वसुंधरे ! मेरी अनेक वर्ष की तपस्या के बल से तू खड़ी हो जा।''

ऐसा कहकर विश्वामित्रजी ने अपनी हथेली सामने रखी किन्तु ज्यों ही शेषनाग ने अपना फन हटाया त्यों ही पृथ्वी डोलने लगी। विश्वामित्रजी घबराये और शेषनाग से बोले :

''पकड़ो... पकड़ो... महाराज !''

फिर शेषनाग ने वशिष्ठजी से कहा : ''अब आप ही पृथ्वी को थाम लो, महाराज !''

तब वशिष्ठजी बोले :

''हे पृथ्वी माता ! अनेक वर्ष की तपस्या से यदि आधी घड़ी के सत्संग का फल श्रेष्ठ हो तो आधी घड़ी के सत्संग के बल से तू थम जा, माता !''

पृथ्वी थम गयी। विश्वामित्रजी कहते हैं : ''अब हमारे प्रश्न का उत्तर दीजिए, महाराज !''

तब शेषनागजी ने कहा : ''उत्तर तो स्वयं मिल गया है। दो क्षण की समता के बल से धरा थम गयी। अतः अनेक वर्ष के तप से आधी घड़ी का सत्संग श्रेष्ठ है।''

स्थूल दृष्टि के लोगों के लिए स्थूल कहानियाँ होती हैं किन्तु सूक्ष्म बुद्धि के लोगों के लिए इस

कथा में सूक्ष्म सार यही मिलता है कि अनेक वर्ष तप करनेवाले में 'तप करनेवाला (कर्त्ता)' मौजूद रहता है जबकि समता क्या है कि समता में रहनेवाला स्वयं समता करनेवाला नहीं रह जाता है। केवल समता ही बच जाती है, जीव खो जाता है। मतलब, समता उस अवस्था को कहते हैं जिसमें कर्त्ता ईश्वर में लीन हो जाता है। एक क्षण के लिए भी ईश्वर में लीन होना अच्छा है किन्तु कुछ बनकर, बड़ा होकर अनेक वर्ष तक तप करना कोई विशेषता नहीं है। स्वर्ग में अनेक वर्ष भोग भोगो चाहे आजीवन रहो किन्तु एक क्षण भी यदि आत्मज्ञान की शांति मिले तो वह सबसे बढ़कर है।

*

भारत की ज्योतिष विद्या

प्राचीन समय से भारत में कई विद्याओं का खूब विकास हुआ है। उनमें गणित विद्या, आयुर्वेद विद्या खगोल विद्या, ज्योतिष विद्या और अध्यात्म विद्या ये सब विद्याएँ अपनी-अपनी जगह अच्छी हैं तथा उपयोगी भी सिद्ध हुई हैं लेकिन इन सबमें भारत की ब्रह्मविद्या सिरमौर है।

साधारणतया लोग ज्योतिषशास्त्र में काफी दिलचस्पी रखते हैं। कई लोगों को संशय भी होता है कि ज्योतिषशास्त्र कहाँ तक सच्चा है ? ज्योतिषशास्त्र अपने आपमें तो सत्य है लेकिन इसका सही एवं पूर्ण ज्ञान जाननेवाले विरले ही हैं।

मैं जब छोटा था तब जिनके पास संस्कृत सीखने जाता था वे मेरे संस्कृत के गुरुजी काशी के रहनेवाले थे। उन्होंने मुझे एक बार बताया था कि काशी में एक बड़े धुरंधर ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता रहते थे। वे बिल्कुल सही ज्योतिष जानते थे। एक बार ब्रह्माजी ने उनकी ज्योतिष विद्या की परीक्षा लेने की ठानी।

ब्रह्माजी ब्राह्मण का वेश बनाकर काशी के मणिकर्णिका घाट पर उन ज्योतिषी के पास आये। उन्होंने उन ज्योतिषी से पूछा : ''इस समय ब्रह्माजी कहाँ हैं ?''

उन्होंने अपनी ज्योतिष विद्या का गणित लगाकर बताया : ''इस समय वे पृथ्वी पर हैं।''

''पृथ्वी पर हैं तो कहाँ हैं ?'

फिर उन्होंने ज्योतिष विद्या के आधार पर बताया :

''भारत भूमि में हैं।''

''भारत भूमि के किस प्रदेश में हैं ?''

''भारत भूमि के उत्तर प्रदेश में हैं।''

''उत्तर प्रदेश में कहाँ हैं ?''

''उत्तर प्रदेश के काशीक्षेत्र में हैं।''

''काशीक्षेत्र में किस जगह पर हैं ?''

''काशी में गंगा-तट पर हैं।''

''गंगा-तट पर किस घाट पर हैं ?''

''यहीं मणिकर्णिका घाट पर हैं।''

''तो फिर इस घाट पर कहाँ हैं ? इस वृक्ष के आगे-पीछे, पूर्व में कि उत्तर में हैं या फिर गंगा में नहा रहे हैं ?''

उन्होंने पुनः अपना गणित लगाया और ब्रह्माजी को जान लिया। ज्यों-ही हाथ पकड़ने गये तो ब्रह्माजी अंतर्धान हो गये। ऐसा ठोस ज्योतिषशास्त्र है परन्तु उसको ठीक से जाननेवाले कोई-कोई विरले ही हैं।

आज कल तो भोलेभाले लोगों को फँसाकर धन कमाने के लिए इस विद्या को आजमाया जाता है। किसी माई को एक ऐसे ठगविद्या जाननेवाले ज्योतिषी ने बताया कि : ''मई महीने में तेरे बेटे का एक्सीडेन्ट हो जायेगा और वह मर जायेगा। इसलिए इतने जप करा दे।''

वह माई तो घबरा गई और कहने लगी : ''बापू ! ज्योतिषी ने कहा है कि खतरनाक एक्सीडेन्ट होगा और तेरा बेटा मर जायेगा।''

मैंने उससे कहा : ''ऐसे लल्लू-पंजुओं के कह देने से कुछ नहीं होता है। जाओ, उस कहनेवाले से जाकर तुम कह दो कि तू मरेगा, मेरा बेटा नहीं।''

लोगों को डराने के लिए ऐसा कह देते हैं। फिर कहेंगे : 'इतना जप करवाओ, इतनी वस्तु ले आओ, इस ग्रह की विधि करो, ऐसा करो... वैसा करो...' और अंत में 'इतने पैसे दे दो'- यही कहते हैं। ऐसे स्वार्थी लोगों की बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

लेकिन जो निःस्वार्थी हैं, इस विद्या को ठीक से जानते हैं, उनकी बातें सच्ची भी होती हैं।

तुम्हारे भाग्य में ग्रह-नक्षत्र का जो प्रभाव होगा सो होगा। उसके लिए भयभीत एवं चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है।

फिकर फेंक कुएँ में, जो होगा देखा जायेगा।

कभी-न-कभी, किसी-न-किसी का, कोई-न-कोई ग्रह वक्र होगा... कभी मंगल तो कभी गुरु, कभी बुध तो कभी शनि। भगवान श्रीकृष्ण तक के सभी ग्रह शुभ नहीं थे तो मेरे-आपके ग्रह थोड़े टेढ़े-मेढ़े हो जाएँ तो उससे घबराना नहीं चाहिए।

ये नवग्रह तो बदलते रहते हैं। उनकी शांति भी हो सकती है परन्तु एक 'आग्रह' नामक जो ग्रह है वही खतरनाक है। आग्रह बड़ा दुःख देता है। इसलिए व्यवहार में अति आग्रह न रखो। 'यही होना चाहिए और यह नहीं होना चाहिए... यही अच्छा है और यह बुरा है... यही सच्चा है और यह झूठा है... नहीं, अच्छा-बुरा, सच्चा-झूठा, ठीक-बेठीक सब यहाँ मिलेगा। इसीका नाम दुनिया है। जो चलता है चलने दो।

बस, आप सत्कर्म करते रहो। सदाचारयुक्त जीवन जियो और अपने 'सोहं' स्वभाव में स्थित होने का प्रयत्न करते जाओ। इसीसे आपका कल्याण होगा। ऊपर कौन-सा ग्रह कैसा चलता है उसकी फिकर नहीं रहेगी। **'जो हुआ सो ठीक ही हुआ और जो होगा सो भी ठीक ही होगा'**- ऐसी उत्तम समझ बन जाएगी तो आप ब्रह्मविद्या के शिखर पर आसानी से पहुँच जाओगे।

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ६८ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जून तक अपना नया पता भिजवा दें।

अज्ञानी, साधक और ज्ञानी

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययंतत् ॥

'जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है तथा जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है तथा निरंतर आत्मचिंतन में जो रत रहते हैं और जिनकी कामनाएँ नष्ट हो गई हैं, ऐसे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।' (भगवद्गीता : १५.५)

कितना सुंदर श्लोक है ! थोड़े में सब कुछ कह दिया। अव्यय पद को, परम पद को पानेवाले लोगों की बात है यह।

दो किस्म के लोग होते हैं : एक वे होते हैं जो पूरा जीवन तो जीतते हुए जीते हैं किन्तु मौत उन्हें पूरा हरा देती है। मौत के आगे वे बुरी तरह हार जाते हैं। जैसे, हिटलर, सिकंदर, मुसोलीनी, कारुन, कंस आदि। दूसरे वे होते हैं जो जीवनभर हारते हुए दिखते हैं किन्तु अंत में जीतकर जाते हैं। मीरा और सूरदास, कबीर और नानक हारते हुए जिये। संसार के भोग-संग्रह से विरक्त एवं विनम्र होकर बाह्य ठाठ-बाट न होने के कारण हारते हुए दिखे किन्तु अंत में वे जीत गये।

भगवान श्रीकृष्ण की बात ही कुछ और है ! मौका छोड़कर भाग गये और वे न हारे, न जीते। जहाँ थे वहीं रहे।

ऐसे ही आप भी भीतर से ईश्वर के प्रति वफादार रहकर जिस समय जो करना पड़े यथायोग्य कर्म करते जाओ। किसीको अनुचित भी लगेगा परन्तु दुनिया की फिक्र छोड़ो। सहज स्वभाव से कर्त्तव्य-कर्म ईमानदारी से निभाते जाओ। व्यवहार करते हुए भी अपने में कर्त्तापन न लाओ। अपने सहज-स्वरूप में टिकते जाओ। जो अपने सहज-स्वरूप को पा लेता है उसको इन्द्रियों के विषय बाँध नहीं सकते। वह तो अकर्त्ता-अभोक्ता स्वभाव में स्थित रहता है और 'सुख' उसका स्वभाव हो जाता है। वह सच्चे सुख को पा लेता है।

संसारी आदमी को सच्चा सुख क्या होता है उसका उसे पता ही नहीं है। न शादी में सुख है न बच्चों में सुख है। न जिंदा रहने में सुख है न मरने में सुख है। सच्चा सुख क्या है ? वह तो आपने देखा ही नहीं है। एक बार तीन मिनट के लिए भी वह सुख मिल जाये तो इन्द्र का सुख भी तुच्छ हो जाएगा।

पीत्वा ब्रह्मरस योगिनोऽभूत् उन्मत्तः ॥
इन्द्रोऽपि रंकवद् भासयेत् अन्यस्य का वार्ताः ॥

'ब्रह्मरस पीकर योगीजन उन्मत्त हो जाते हैं। उनको इन्द्र भी रंक जैसा लगता है तो औरों की क्या बात ?'

आपके पास कौन-सा सुख है ? उस आत्म-परमात्मपद के आगे दुनियाभर के प्राइम मिनिस्टरों का पद भी छोटा लगता है, औरों की तो बात ही क्या है ? जिसके आगे इन्द्र भी रंक जैसा दिखता है ऐसा खजाना आपके पास है फिर भी आप तुच्छ व्यसनों-विकारों के पीछे दौड़ते हो !

इन्सान की बदबख्ती अंदाज से बाहर है।
कमबख्त खुदा होकर बंदा नजर आता है ॥

इन्सान है तो ईश्वर का स्वरूप और उससे अलग होना चाहे तो एक क्षण के लिए भी अलग नहीं हो सकता लेकिन अफसोस है कि आज तक उससे मुलाकात ही नहीं हुई। उस आनंदस्वरूप से एक पल भी आप दूर नहीं हो सकते लेकिन आज तक आपने उस आनंद-स्वरूप को जाना ही नहीं।

क्यों नहीं जाना ? क्योंकि आप शरीर और मन के साथ जुड़ गये। संस्कार भी ऐसे डाले गये कि 'तू काला है ... तू गोरा है... तू पतला है... तू मोटा है... यह अच्छा लगता है... वह बुरा लगता है।' ऐसी बातें

दिमाग में भर दी गयीं कि 'मंदिर में जाओ, रोओ और गुलामी करते रहो । भगवान आशीर्वाद देंगे । संतोषी माँ रीझेंगी तो मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा । यहाँ थोड़ा दुःख भोग लो, वहाँ सुख मिलेगा ।' लेकिन...

मुंआ पछीनो वायदो नकामो, को जाणे छे काल।
आज अत्यारे अब घड़ी साधो, जोई लो नगदी रोकड़ माल ॥

जिसको यहाँ सुख नहीं मिला उसको वहाँ सुख कैसे मिल सकता है ? आप जहाँ हो, जिस देश में हो, जिस वेश में हो वहाँ पर अगर सुख का अनुभव नहीं कर सकते हो तो दूसरी जगह पर भी कभी नहीं कर सकोगे । ईश्वर सुखस्वरूप है, आनंदस्वरूप है । वह सदा है, सर्वत्र है, सर्वव्याप्त है । जो सदा है, सर्वत्र है, वह अभी यहाँ भी है । अगर यहाँ नहीं मिलता तो फिर कब और कहाँ मिलेगा कि नहीं मिलेगा, क्या पता ?

यदि आप उस ईश्वर के ज्ञान को पा लोगे तो सारे त्रिलोकी का राज्य मिले फिर भी आपके चित्त में हर्ष नहीं होगा और सारी त्रिलोकी आपकी विरोधी हो जाये तो भी आपको शोक नहीं होगा । आपको शूली पर चढ़ा दिया जाये तो भी शरीर की पीड़ा अपने में नहीं मानोगे । आपके चित्त में सुख-दुःख के समय सुख-दुःख का भास तो होगा किन्तु आप समझोगे कि 'यह शरीर या चित्त में हो रहा है ।'

ज्ञानी, साधक और अज्ञानी के चित्त की दशा अलग-अलग होती है । अज्ञानी का, मूढ़ का चित्त कैसा होता है ? मानो, लोहे पर लकीर । जब तक जंग लगकर वह लोहा खत्म न हो जाये या तो उसे भट्ठी में गला नहीं दिया जाये तब तक वह लकीर मिटेगी नहीं । ऐसे ही अज्ञानी को वर्षभर पहले किसीने कुछ सुना दिया होगा या कुछ तकरार हुई होगी तो बरसों तक याद रखेगा और दुःखी होता रहेगा, द्वेषभाव बनाये रखेगा । अगर कोई सुख देनेवाली चीज मिल गई होगी तो उसको भी याद करेगा कि 'अहा... हा... बचपन में तो ऐसा मिला था... वैसा मिला था ।'

साधक का चित्त कैसा होता है ? भक्त का चित्त कैसा होता है ? मानो, रेत पर लकीर । रेत पर खींची हुई लकीर हवा-आँधी चलने पर मिट जाती है । ऐसे ही यदि साधक या भक्त के जीवन में कुछ अच्छे-बुरे प्रसंग आयेंगे तो वह उसे पकड़कर नहीं बैठेगा । सुख आया तो भगवान की कृपा मानेगा और दुःख आया तो उसे भी भगवान की मर्जी मानकर मन का समाधान कर लेगा । वह सत्संग करेगा, थोड़ा भजन-कीर्तन करेगा और शरीर के मान-अपमान की बात भूल जायेगा । 'भगवान उसका भला करें' या 'हम क्यों चिंता करें ?' ऐसी भावना रखकर भगवान के भरोसे जो जीवन बिताता है वह साधक है, भक्त है । अज्ञानी-मूढ़ से तो साधक-भक्त अच्छा है, फिर भी भक्त का चित्त है तो रेत पर लकीर ।

...और ज्ञानी का चित्त कैसा होता है ? जैसे, बहते पानी पर लकीर । पानी पर आप लकीर खींचो तो जितनी देर आपकी उँगली ठहरी है उतनी देर के लिए थोड़ी-सी लकीर हुई ऐसा दिखेगा किन्तु वह टिकेगी नहीं । तुरंत ही मिट जायेगी । उँगली उठी नहीं कि लकीर मिटी नहीं । ऐसे ही ज्ञानी में व्यवहार के समय तो राग-द्वेष जैसा लगेगा, कहीं क्रोधी, कहीं नाराज तो कहीं मौज में दिखेंगे लेकिन जैसे ही उँगली उठाई कि लकीर गायब ! ज्यों ही व्यवहार खत्म हुआ कि बैठ गये अपने आपमें । मानो, कुछ किया ही नहीं, सुख-दुःख को जानते ही नहीं ।

ऐसे महापुरुष को तो चाहे कितना भी मान-सम्मान मिल जाये या सब उन्हें छोड़कर चले जायें, अप्सराएँ आकर पैरचंपी करें या कोई दुष्टा आकर जूता मारे फिर भी उनके गहरे चित्त में कोई परिवर्तन नहीं होता है । वे न किसीसे राग रखते हैं न किसीसे द्वेष रखते हैं और न ही किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति का उन्हें भय होता है क्योंकि उनको किसी भी प्रकार के फल की इच्छा नहीं होती है ।

आप अगर ज्ञानी हो जाओ तो आपकी चरणरज भी जिसको मिल जायेगी उसका तो सौभाग्य होगा तब होगा लेकिन अभी जो ज्ञान की बातें सुन रहे हो इससे भी जो पुण्य हो रहा है उसे एक तो भगवान जानते हैं, दूसरा भगवद्-प्राप्त महापुरुष जान सकते हैं । आप भी थोड़ा-बहुत जानते हो किन्तु पूरा नहीं जानते कि आपको कितना पुण्य मिल रहा है ? आपको अमित पुण्य मिल रहा है । शरीर की, मन की, सुख-दुःख की

अवस्थाएँ सहन करके भी ऐसी बातें सुन लेनी चाहिए, ऐसा ज्ञान पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

लोग समझते हैं कि संत तो बेचारे उदासीन होते हैं। नहीं नहीं, वे तो पूरे आत्ममस्ती में खिले हुए होते हैं। संसारियों के सुख के विषय में ज्ञानी उदासीन होते हैं। उदासीन भी नहीं, उदासीनवत् होते हैं।

योगी अर्थात् योगाभ्यास करके जिसने जीव-ब्रह्म का योग कर लिया है, मेल कर लिया है। ऐसे योगी के सामर्थ्य का बयान ही नहीं हो सकता है... योगी इतने समर्थ कैसे होते हैं ? उनको इतना सामर्थ्य कौन प्रदान करता है ? वही चिदाकाश चैतन्य आत्मा।

एक राम घट घट में बोले दूजा राम दशरथ घर डोले।
तीसरे राम का सकल पसारा चौथा राम है सबसे न्यारा॥

इन चार उपाधियों को उपाधि समझकर चारों में व्याप्त एक ही चैतन्य आत्मा को जो जान लेता है वह उस सर्वशक्तिमान परमात्मा से सामर्थ्य भी पा लेता है। जहाँ सब एक ही एक है, पूर्ण अभेद है, वहाँ लेना-देना भी क्या ? मिलना-बिछुड़ना भी क्या ? मिलना और बिछुड़ना उपाधि में होता है, भेद में होता है। स्वरूप में मिलना-बिछुड़ना नहीं होता है। इसलिए ज्ञानी स्वयं अपने आपको, खुद की खुदाई को पा लेता है।

श्रीकृष्ण भी कहते हैं कि जो पुरुषार्थ करके देह और इन्द्रियों से ममत्व छुड़ाकर अपने आपमें स्थित हो जाता है उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। वह मेरा ही स्वरूप है।

आपके मिलने से यदि किसीका चित्त प्रसन्न न होता हो या कोई उन्नति न होती हो तो आप किसीसे मत मिलना। जैसे, संक्रामक रोगवाला व्यक्ति जब तक रोग से मुक्त नहीं होता तब तक औरों के साथ मिलता-जुलता नहीं है। आपको भी तगड़ा बुखार आ जाता है तो चादर ओढ़कर घर में सिकुड़ते रहते हो और जब स्वस्थ होते हो तब बाजार में जाते हो न ? ऐसे ही जब आपकी मानसिक अवस्था ठीक नहीं हो तब आप किसीसे मिलना मत। परन्तु जब मन खूब प्रसन्न हो, अपने आपकी मस्ती में छलकता हो उस वक्त आपका मिलना सामनेवाले के चित्त को प्रसन्न करेगा, उन्नत करेगा। आप उसे आनंद का दान दोगे।

अन्नदान, धनदान, वस्त्रदान, गौदान, गौरस-दान, भूमिदान और कन्यादान- ये सब अपनी-अपनी जगह पर ठीक हैं लेकिन आत्मानंद में तृप्त महापुरुष जिस अभय का, जिस आनंद का दान करते हैं वह दान सर्वोपरि है। जिनके अनुभव में ब्रह्म ही सत्य है, जिनकी बुद्धि उसीमें प्रतिष्ठित है ऐसे ब्रह्मज्ञानी संत आनंद का दान देनेवाले, आनंददाता होते हैं। उनके लिए कबीरजी कहते हैं :

निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है।

निरंजन माने जहाँ विषय-विकाररूपी इन्द्रियों की लोलुपता की भीड़ नहीं जा सकती, जहाँ मन नहीं जा सकता। 'अंजन' अर्थात् इन्द्रियाँ। जहाँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि में इन्द्रियाँ नहीं पहुँचतीं वह निरंजन है। उपनिषद् कहती है :

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

कबीरजी आगे कहते हैं :

भख्खड़ माथे गौ बियाये, उसका दूध बिलोता है।
मक्खन मक्खन साधु खाये, छाछ जगत को पिलाता है॥
निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है।

जो नीचे के केन्द्रों में जीते हैं उन्हें तो सुख-दुःख की चोटें लगती हैं लेकिन वे जब ऊपर के केन्द्रों में चले जाते हैं तब ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न होती है और वे अवर्णनीय, अनुपम ब्रह्मानंद का अनुभव करते हैं। जैसे घड़ा भर जाता है तो पानी बाहर छलकने लगता है ऐसे ही उनका छलकता हुआ आनंद इधर-उधर फैलता है तो उनकी दृष्टि मात्र से लोग भी उल्लासित एवं गद्गद् हो जाते हैं।

जब चित्त की यह अवस्था होती है तब उन पर हर्ष और शोक का कोई असर नहीं होता है। राग-द्वेष और चिन्ता उन्हें चूर नहीं कर सकती क्योंकि उन्होंने कुछ-कुछ अलख के आनंद को पाया है। वह ब्रह्मानंदरूपी मक्खन तो साधु खाता है और उस अनुभव की वाक्यरूपी छाछ जगत को पिलाता है जो जगत के लिए कल्याणकारी हो जाती है क्योंकि उसके आधार पर और लोग भी परम पद को पाने के रास्ते पर चल पड़ते हैं एवं देर-सबेर उस पद को पा लेते हैं।

जलकमलवत् जीवन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

विवेकवान व सतर्क रहनेवाले मनुष्य को बाहर की कैसी भी विपरीत परिस्थिति गिरा नहीं सकती है, उद्विग्न नहीं कर सकती है। ऐसा मनुष्य क्रोधित करानेवाले उत्तेजनात्मक वातावरण में भी भीतर से क्रुद्ध नहीं होता, लोभ के समय भी लोभ नहीं करता और अशांति का वातावरण होने पर भी अपने चित्त की शांति बनाये रखता है। इतना ही नहीं, ऐसे विवेकी, धीर मनुष्य के संग में आनेवाले व्यक्तियों में भी उसके गुण आने लगते हैं।

भगवान बुद्ध के दो भिक्षु शिष्य चतुर्मास में धर्म के प्रचार हेतु जानेवाले थे। अतः जाते समय वे बुद्ध के पास प्रणाम करने आये।

पहला भिक्षु बोला : ''भंते ! मेरे लिए कोई आदेश हो तो बताइये।''

बुद्ध : ''ये चार महीने तुम बाहर रहोगे अतः अपने आपको विकारों से बचाने के लिए स्त्री का संग कभी मत करना। किसी भी स्त्री के सामने देखना भी नहीं।''

यह वार्तालाप सुनकर भगवान बुद्ध के उत्तम शिष्यों में से आनंद ने बीच में ही अपना प्रश्न रखा :

''भगवन् ! क्षमा। स्त्री को देखना भी नहीं यह बात तो ठीक है किंतु जब स्त्री को देखेंगे तभी हम वहाँ से नजर हटायेंगे। इस प्रकार न देखने पर भी एक बार तो स्त्री दिख ही जाएगी।''

बुद्ध : ''एक बार दिख जाय तो कोई बात नहीं लेकिन दुबारा नहीं देखना चाहिए और फिर भी दिख ही जाय और ऐसी परिस्थिति निर्मित हो जाए तो ठीक है लेकिन उसे छूना कभी नहीं।''

पहला भिक्षु : ''जैसी आज्ञा।''

परंतु इस पर भी भिक्षु आनंद ने अपनी शंका व्यक्त की :

''यदि ऐसी परिस्थिति आ जाय जिसमें स्त्री को छूना अत्यावश्यक हो जाय जैसे, दुर्घटना होने पर या स्त्री के घायल होने पर उसे अस्पताल पहुँचाना पड़े या सफर में पास बैठना पड़े, तब ?''

बुद्ध : ''परिस्थितिवश स्त्रियों को छूना पड़े तो ठीक है लेकिन काफी समय वे साथ न रहें इस बात का ध्यान रहे।''

पहले भिक्षु ने बुद्ध की आज्ञा को शिरोधार्य करके प्रयाण किया।

अब दूसरा भिक्षु आगे आया। वह काफी शांत, गंभीर, समझदार था। उसे भगवान बुद्ध ने आज्ञा दी :

''नगर के बाहर एक वेश्या रहती है। ये चार महीने तुम उसके घर रहकर बिताना।''

भगवान बुद्ध के वचनों को सुनकर सारे भिक्षु चौंक उठे कि 'यह क्या ? अभी-अभी तो पहले भिक्षु को स्त्रियों का संग न करने की कठोर आज्ञा दी और अभी ही इस भिक्षु को वेश्या के घर चार महीने तक रहने की आज्ञा दे रहे हैं ? एक संन्यासी-भिक्षु वेश्या के साथ उसके घर पर रहेगा तो लोग थू-थू करेंगे, भारी बदनामी होगी एवं भिक्षु की इतने लम्बे समय की साधना मिट्टी में मिल जाएगी। बुरी तरह से उसका पतन हो जाएगा...'

भगवान बुद्ध ने सबके चिंताग्रस्त चेहरों को नाप कर उत्तर में सिर्फ इतना ही कहा :

''जो होता है उसे देखते जाओ।''

सारे भिक्षु सशंक थे लेकिन उस आज्ञाकारी समचित्त भिक्षु के मन में जरा-सी भी कुशंका नहीं जगी। उसने कहा :

''गुरुदेव की आज्ञा में मेरा सौ प्रतिशत कल्याण ही छुपा है। अतः मुझे अब आज्ञापालन करने की अनुमति दीजिए।''

बुद्ध अपने शिष्य की विचारधारा पर प्रसन्न होकर

मुस्कराये और आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दे दी।

पूरे नगर में बात फैल गई कि बुद्ध का एक शिष्य वेश्या के साथ उसके घर पर रह रहा है। बुद्ध के पास भी खबरें आने लगीं :

''भंते ! वह तो उस वेश्या के हाथों का बनाया हुआ खाना भी खाने लगा है।''

किसीने कहा :

''इतना ही नहीं, वह तो अब उस वेश्या के नाच-गान में ही डूबा रहता है।''

ऐसी कई अफवाहें रोज फैलने लगीं। इस पर भी भगवान बुद्ध को शांत बैठे देखकर धीरे-धीरे शिष्यों की श्रद्धा डगमगाने लगी। लोगों द्वारा निंदा तो हो ही रही थी, अब बुद्ध के अपने शिष्य भी विरोधी बनने लगे। चार महीने के अंदर-अंदर तो सारे समाज में बुद्ध के प्रति अश्रद्धा हो गई।

...लेकिन इससे बुद्ध की शांति में कोई फर्क नहीं पड़ा। किसीके कह देने से कि सूर्य पूरब में नहीं, पश्चिम में उगता है तो क्या सचमुच में सूर्य पश्चिम में उगना शुरू कर देगा ? ऐसे ही बुद्ध के बारे में अनाप-शनाप बक देने से क्या बुद्ध ऐसे हो जाएँगे ? अज्ञानी की मूखर्ताभरी बातों से ज्ञानी की स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता है। अष्टावक्रजी महाराज ने कहा है :

''मुक्त पुरुष किसी भी परिस्थिति में क्षोभित नहीं होते।''

अब देखना यह है कि संग का रंग कैसा, किसको तथा किससे लगता है ? भिक्षु वेश्या के संग से बिगड़ा कि वेश्या भिक्षु के संग से सुधरी ?

चार महीने के बाद वह भिक्षु लौटा। भिक्षु के साथ वेश्या भी आई और सीधे बुद्ध के चरणों में गिर पड़ी और बोली :

''आपने मेरे घर भिक्षु को भेजकर मेरा उद्धार कर दिया, भगवन् !''

बुद्ध : ''वह कैसे ?''

वेश्या : ''मैंने इनको अपने नृत्य-गान से प्रभावित करना चाहा। मैंने अपने जाल में फँसाने के सभी तरीके आजमाये किंतु सब व्यर्थ गया। इन पर कोई असर ही नहीं पड़ा। वे तो बस, शांतचित्त होकर, निर्लेप होकर देखते जाते थे। मैंने प्रयत्नपूर्वक उनको प्रभावित करना चाहा परंतु वे प्रभावित न हुए। भिक्षु ने स्वयं कोई प्रयत्न नहीं किया था। फिर भी धीरे-धीरे मैं उनके धीरज, शांति और सादगी भरे जीवन से प्रभावित होती गई। मैंने उनसे आपके बारे में सुना। उनका सत्संग सुनकर मेरा सारा जीवन ही बदल-सा गया। भंते ! मुझे अपने कर्म से घृणा आती है। मैंने आज से अपना वह घर छोड़ दिया है। मैं अब सदा के लिए आपके चरणों में आना चाहती हूँ।''

सब आश्चर्यचकित हो उठे यह सुनकर। फिर किसी भिक्षु ने उस भिक्षु से पूछा :

''ऐसे माहौल में भी तुमने कैसे अपना समत्व सँभाले रखा ?''

भिक्षु : ''यह तो गुरुदेव की कृपा थी। गुरुदेव के वचन मेरे कानों में सदैव गूँजते रहते थे कि 'यदि मनुष्य विवेक-बुद्धि करके सदैव सतर्क एवं सावधान रहे तो उसे कोई भी विपरीत परिस्थिति हिला नहीं सकती।''

गुरुवचनों पर अडिग विश्वास एवं उनके आज्ञापालन का कैसा चमत्कार है कि वेश्या भी भिक्षु के संग से वेश्यावृत्ति को छोड़कर संघ में शामिल हो गयी ! भिक्षु के चार महीनों के संग ने उसमें आमूल परिवर्तन ला दिया। सच ही है- संतों का संग, सत्पुरुषों का संग जीवन को पावन बना देता है। सत्संग से जीवन में संयम और सदाचार की सुवास फैलने लगती है एवं जीवन दिव्यता की ओर बढ़ने लगता है।

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी तरह की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) **'ऋषि प्रसाद'** के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।
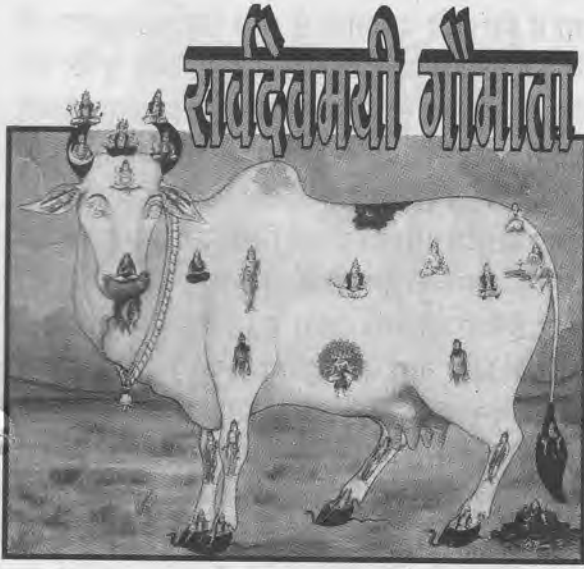
गौमाता : रोग-दोषनिवारिणी

[गतांक का शेष]

गोघृत के औषधीय गुणों का वर्णन करना आसान नहीं है। फिर भी कुछ विशिष्ट गुणों का वर्णन निम्न प्रकार है :

पंचगव्य घृत : गोबर का रस, गोदुग्ध, गाय का दही, गोमूत्र और गोघृत को मिलाकर सिद्ध करें। यह घृत अपस्मार, ज्वर, उन्माद तथा कामला को शांत करता है।

पंच कोलादि घृत या षटपल घृत : पीपल, पिपलामूल, चब्य, चित्ता (चित्रकमूल) तथा सोंठ और जौखार १-१ पल (२४ तोला), गोघृत १ सेर, गोदुग्ध १ सेर, इन सबको धीमी आँच पर पकाकर फिर छान लें। यह घृत गुल्म, ज्वर, उदर रोग, गृहणी रोग, पीनस, श्वास-काँस, मंदाग्नि, शोथ तथा ऊर्ध्ववायु को नष्ट करता है।

धतूरे का विष : गाय के दूध में गोघृत मिलाकर पिलाते रहें। गोघृत बहुत अच्छा विषनाशक है। अतः जल्दी विष को अवशोषित करके लाभ पहुँचाता है।

कब्ज : कब्ज ठीक करने के लिए जुलाब लिया जाता है। जुलाब से पहले तीन दिन तक १-१ चम्मच गाय के ताजे घी में थोड़ी पिसी काली मिर्च मिलाकर सोते समय चाट लें। इससे आँतें मुलायम हो जाएँगी तथा मल फूल जाएगा और आसानी से बाहर निकल जाएगा।

हिचकी : अधिक हिचकी आने पर १-२ चम्मच ताजा घी जरा-सा गर्मकर चाट लेना चाहिए। इससे हिचकी आनी बंद हो जाएगी।

गला बैठना : गला बैठने पर २ चम्मच ताजे घी में पिसी काली मिर्च डालकर गर्म करें और ठंडा होने पर भोजन के बाद इसका सेवन करें।

बवासीर : बादी बवासीर में गोघृत तथा त्रिफला चूर्ण मिलाकर सेवन करना लाभदायक रहता है।

छाले पड़ना : छाले चाहे जलने से हों या अन्य किसी कारण से, गोदुग्ध की मलाई या घी का लेप जलन को शांत करता है तथा छाले फूटने पर घाव भी भर जाते हैं।

होठ फटना या गाल फटना : होठ फटने पर गाय के घी में थोड़ा-सा नमक मिलाकर रात्रि में सोते समय लगायें। एक-दो दिन में ही असर मालूम पड़ जाएगा। होठ, गाल या चेहरे पर गाय के दूध की मलाई लगाने पर होठ और गाल फटने की नौबत ही नहीं आती है।

तीव्र ज्वर : तेज बुखार में गोघृत की मालिश से शरीर स्वस्थ रहता है।

नाभि फूलना : बच्चे की नाभि फूलने लगे तो गाय के गर्म घी में चुटकीभर हल्दी डालकर रूई का फाहा उसमें भिगो लें। सहने योग्य गर्म रह जाने पर नाभि पर फाहा रखकर पट्टी लपेट दें। नाभि सिकुड़कर सामान्य हो जाएगी।

नासूर : यह हड्डी तक जानेवाला फोड़ा है। इसके मवाद से बहुत बुरी बदबू आती रहती है। गाय के पुराने घी से नासूर जल्दी सूख जाता है। पहले नीम के पत्तों के काढ़े से फोड़े को साफ करें। बाद में कपड़े की बत्ती बनाकर गोघृत से तर करके नासूर में डाल दें। दिन में दो या तीन बार बत्ती बदलें। डेढ़-दो महीनों में फोड़ा बिल्कुल सूख जाएगा। रोगी को गोदुग्ध में गोघृत डालकर पीना चाहिए जिससे शरीर निर्विष रहे और जल्दी लाभ मिले।

चेहरे की कांति बढ़ाना : रात में सोते समय चेहरे पर घी की मालिश करने से कुछ ही दिनों में

चेहरे के दाग, धब्बे तथा झाँई आदि मिट जाते हैं और त्वचा कांतियुक्त हो जाती है।

बाल लम्बे व घने करना : सोते समय सिर के बालों में गाय का घी लगाने से बाल लम्बे, घने व चमकदार हो जाते हैं।

स्मरणशक्ति बढ़ाना : सोने से पहले सिर पर गोघृत की मालिश करें।

अनिद्रा : गाय के घी में जायफल घिसकर आँख की पलकों पर पतला लेप करने से शीघ्र ही नींद आ जाती है।

नकसीर : नकसीर फूटने पर नाक में दोनों तरफ घी की बूँदें टपकायें। घी सूँघने तथा गर्दन नीची करके लिटाने से खून गिरना बंद हो जाता है।

फोड़ा, फुन्सी तथा घाव : इन पर घी का फाहा बनाकर लगाना लाभप्रद रहता है।

घी का फाहा बनाने के लिए रूई को पानी में भिगोकर हथेलियों से निचोड़ लें। दो चम्मच शुद्ध घी कटोरी में डालकर आग पर खूब गर्म करके फाहा उसमें डाल दें तथा कटोरी को आग से उतार लें। सहता गर्म रहे तब फाहे को निचोड़कर घाव पर रख दें। ऊपर से पान का पत्ता रखकर सूखी साफ रूई रखकर पट्टी बाँध दें। प्रतिदिन नया फाहा प्रयोग करें। पुराने से पुराना घाव भी ठीक हो जाएगा।

नजर की कमजोरी : कमजोर नजरवालों को प्रतिदिन गाय का घी २ चम्मच तथा मिश्री २ चम्मच मिलाकर भोजन के साथ या दिन में एक बार खाना चाहिए। दो माह तक खाने से बहुत लाभ होता है।

मूर्च्छा आना या सुन्न होना : किसी व्यक्ति को मूर्च्छा आने, चेतनाशून्य होने तथा शरीर के किसी भाग के सुन्न पड़ जाने पर गाय के घी की मालिश करने से तुरंत चेतना आ जाती है।

वायु विकार या जोड़ों का दर्द : जोड़ों का दर्द, गठिया आदि में गाय के पुराने घी की मालिश काफी लाभकारी सिद्ध होती है।

(3) गोदधि तथा मट्ठा : मट्ठा या छाछ को भूलोक का अमृत कहा गया है। (धार्मिक ग्रंथों में तो इसके गुणों के वर्णन में यहाँ तक कहा गया है कि यदि देवलोक में मट्ठा उपलब्ध होता तो देवराज इन्द्र का चेहरा भद्दा न होता और कुबेर को कोढ़ से पीड़ित न होना पड़ता।) मट्ठा स्वाद तथा गुणों में दूध से भी बढ़कर है। चरक संहिता में गाय के मट्ठे को बहुत ही गुणकारी तथा औषधीय गुणों से भरपूर बताया गया है। इसके नियमित सेवन से शरीर की रोग सहने की क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि होती है। शरीर हमेशा नीरोगी रहता है। जिस रोग को ठीक करने के लिए गाय के मट्ठे का सेवन किया जाता है वह रोग पुनः कभी नहीं उभरता है। यदि चाय, कॉफी तथा शीतल पेयों की आदत छोड़कर हम घर के बने एक गिलास मट्ठे का नियमित रूप से सेवन करें तो निश्चित रूप से सस्ता भी रहेगा तथा स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। मट्ठा कितना गुणकारी है इसका सम्पूर्ण विवेचन करना तो कठिन है परंतु उसके कुछ सामान्य गुणों का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

गाय के दूध को औटाकर दही डालकर उसे जमाया जाता है जिससे गोदधि बनता है। दधि को बिलोकर उसमें से नवनीत निकाल लिया जाय तो मट्ठा बनता है। इसे तक्र या छाछ भी कहते हैं। गोदधि उत्तम, बलकारक, स्वादिष्ट, रुचिकर, पाचक, स्निग्ध, पौष्टिक तथा वातनाशक है। अन्य प्राणियों के दूध से बने दही की अपेक्षा गोदधि अधिक गुणदायक है। यह स्वाद में कुछ कषाय तथा विपाक में अम्लीय होता है। यह मूत्र विकार, प्रतिशय, विषम ज्वर, अतिसार, अरुचि, कृशता में लाभकारी होता है। यह बल और शुक्र को बढ़ाता है।

वैसे तो भैंस तथा बकरी के दूध से भी मट्ठा बनाया जाता है परंतु स्वास्थ्य-रक्षा में गोतक्र का विशेष महत्त्व है। गोतक्र त्रिदोषनाशक, पथ्यों में उत्तम, अजीर्णता दूर करनेवाला, रुचिकारक, बुद्धिजनक, अर्श (बवासीर) और उदरविकार-नाशक है। यह कई रोगों में पथ्य आहार सिद्ध होता है। तक्र का नियमित सेवन करनेवाला मनुष्य कभी रोगी नहीं होता है। आयुर्वेद के अनुसार मट्ठा पाँच तरह का होता है : घोल, मथित, तक्र, उदश्वित और छाछ। (क्रमशः)

अनिद्रा रोग मिटा...

पूज्यश्री के चरणों में मेरा कोटि-कोटि अभिवादन !

मैं हृदय-रोगी हूँ। मेरे हृदय का ऑपरेशन भी हो चुका है। मुझे कमर की भी इतनी तकलीफ थी कि दो-चार घण्टे से ज्यादा काम नहीं कर सकता था लेकिन दीक्षा के बाद अब मैं १६-१८ घण्टे भी काम कर सकता हूँ।

दीक्षा के दिन भी मैं बैठ नहीं पा रहा था इसलिए मुझे लेटकर दीक्षा लेनी पड़ी थी। मुझे नींद भी नहीं आती थी। रात को सोने से पहले जब तक नींद की गोलियाँ न लूँ, सो भी नहीं पाता था। नींद की गोलियाँ रात को खाकर ही सो पाता था। इसके बावजूद भी आधी रात को कभी-कभी नींद खुल जाती थी और मुझे और भी गोलियाँ लेनी पड़ती थी। तभी मुझ पर पूज्य श्री सद्गुरुदेव की और ईश्वर की ऐसी कृपा हुई कि मुझे 'ऋषि प्रसाद' मासिक पत्रिका में नींद का एक मंत्र मिल गया।

ॐ शुद्धे शुद्धे ॐ महायोगिनी महानिद्रा स्वाहा।

मैंने इस मंत्र को रात को सोने से पहले जपना शुरु किया। मंत्र का ख्याल आते ही नींद आनी शुरु हो जाती है एवं २-३ बार जपने से मुझे तुरन्त ही नींद आ जाती है।

मंत्र विज्ञान में कितनी शक्ति है, मंत्र का कितना चमत्कारिक प्रभाव है इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।

- भीमनदास
उदयपुर (राज.)

मुझे नया जीवन प्रदान कर दिया...

पूज्य बापूजी जब सन् १९९४ में भीलवाड़ा में पधारे थे तभी मैंने उनसे मंत्रदीक्षा प्राप्त की थी।

दीक्षा से पहले मैं मानसिक रूप से बहुत परेशान रहता था, हर समय बेचैन रहता था। मेरा जी भी घबराता रहता था एवं मुझे रातभर नींद भी नहीं आती थी।

मैंने 'पंचामृत' में साधकों के अनुभव में पढ़ा था कि पूज्यश्री कहीं भी हों, अपने भक्तों की पुकार सुनकर सूक्ष्म रूप में दर्शन दे देते हैं।

एक रात को सोने से पहले मैंने पूज्य बापूजी की तस्वीर का ध्यान किया और ध्यान करते-करते शान्त हो गया। मैं ध्यान में ही था कि पूज्य बापूजी ने मुझे दर्शन दिया और मेरे सिर पर हाथ फेरते-फेरते कहा कि 'सो जा... सो जा... सो जा...' मुझे तुरंत ही नींद आ गई और मैं सुबह ४ बजे तक सोता रहा।

उसके दो साल के बाद पूज्यश्री जब पंचेड़ में पधारे थे, तब मैंने उनसे प्रार्थना की :

''बापूजी ! मेरी नस-नाड़ियाँ बिल्कुल कमजोर हो गई हैं । मैं स्नायु-रोग से पीड़ित हूँ। मैं स्कूल नहीं जा सकता हूँ एवं पढ़ा भी नहीं सकता हूँ। मेरे बीबी-बच्चों का क्या होगा।''

पूज्यश्री ने मुझसे कहा :

''तू 'रजत मालती' का प्रयोग कर।''

मैं उनकी आज्ञानुसार 'रजत मालती' का प्रयोग करने लगा। उसके एक महीने के प्रयोग से ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरी रग-रग में ताकत आ गई है। मुझे अत्यधिक आन्तरिक शक्ति महसूस होने लगी।

'रजत मालती' ने तो मुझे नया जीवन प्रदान कर दिया है। मैं उन सभी व्यक्तियों को जो स्नायु रोग से पीड़ित हैं, सलाह दूँगा कि वे पूज्यश्री के आश्रम की 'रजत मालती' का प्रयोग करें। इससे उन्हें अवश्य चमत्कारिक लाभ प्राप्त होगा। हरि ॐ...

- चन्द्रशेखर ज्योतिषी
हायर सेकैण्डरी स्कूल, प्रतापनगर, भीलवाड़ा।

*

पका आम

पका आम स्वाद में मधुर, ठंडा, बलवर्धक, धातुवर्धक, पौष्टिक, भारी, त्रिदोषनाशक, जठराग्निउद्दीपक, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, सुखकर्त्ता, कफकर्त्ता एवं शौच साफ लानेवाला है। तृषा, दाह, वायु, पित्त, थकान एवं अरुचि को दूर करनेवाला है। शरीर में चरबी एवं मूत्र का प्रमाण बढ़ाता है। पका आम हृदय के लिए हितकारी, शरीर के वर्ण को सुधारनेवाला एवं संग्रहणी, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, यकृतवृद्धि, आँतों की सूजन जैसे रोग मिटाता है। अच्छा आम वृक्ष पर से उतारने के बाद घास के बीच कृत्रिम गरमी से पकाने पर गुणकारी आम बनता है। पका आम गर्मियों के दिनों में टॉनिक है।

पके आम से रक्त में हीमोग्लोबिन, लाल कण बढ़ते हैं एवं कफदोष बढ़ता नहीं है। दूध के साथ पका अच्छा आम खाने से वीर्यवृद्धि होती है। आँत, पेट एवं फेफड़ों के अनेक रोग, कमजोरी एवं रक्त की अशक्ति के दर्द अवश्य दूर होते हैं। पके आम के सेवन से बहुमूत्र एवं प्रमेह भी मिटता है।

पके आम से सातों धातुओं की वृद्धि होने से शरीर का स्वास्थ्य सुधरता है। पका आम दुर्बल, कृश लोगों को पुष्ट बनाने के लिए सर्वोत्तम औषध एवं खाद्य फल है।

कच्चा एवं स्वाद में खट्टा तथा तिक्त आम खाने से लाभ के बजाय हानि हो सकती है। कच्चा आम खाना हो तो उसमें गुड़, धनिया, जीरा और नमक मिलाकर खा सकते हैं।

पके आम का रस बलवर्धक, पाचन में थोड़ा भारी, वायु तथा पित्तदोष करनेवाला, शौच साफ लानेवाला, वीर्यवर्धक, तृप्ति एवं पुष्टि देनेवाला तथा कफ बढ़ानेवाला है। लम्बे समय तक रखा हुआ बासी रस वायुकर्त्ता, पाचन में भारी एवं हृदय के लिए अहितकर्त्ता है।

दूध के साथ कोई भी खट्टा आम नहीं खाना चाहिए क्योंकि वह रक्तविकार करता है। डिब्बों में पेक बासी रस खाना हितकर नहीं है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार पका आम पेट को मृदु बनानेवाला, मूत्र लानेवाला, पौष्टिक, तृप्तिदायक, मृदु, विरेचक, बाह्य विषप्रकोप का एवं जंतुओं का नाश करनेवाला तथा त्वचारोग-नाशक है।

युनानी डॉक्टरों के मतानुसार पका आम आलस्य को दूर करता है, मूत्र साफ लाता है, टी. बी. मिटाता है, किडनी एवं बस्ति के लिए शक्तिदाता है।

पका आम चूसकर खाना आँख के लिए हितकर है, वीर्य की शुद्धि एवं वृद्धि करता है। शुक्रप्रमेह आदि विकारों एवं वातादि दोषों के कारण जिनको संतानोत्पत्ति न होती हो उनके लिए पका आम लाभकारक है।

पका आम व्रणरोपक है। उसके सेवन से शुक्राल्पताजन्य नपुंसकता, दिमाग की कमजोरी, अल्सर आदि रोग दूर होते हैं एवं रक्त की शुद्धि होती है। आहार में केवल दूध एवं पके आम का रस लेने से कुष्ठ रोग मिटता है।

आम के बासी रस में सोंठ एवं घी मिलाकर खाने से वह हितकारी बनता है। आम खाने के बाद पानी नहीं पीना चाहिए।

जिस आम का छिलका पतला, गुठली छोटी हो और जिसमें रेसा न हो, जिसमें गर्भदल अधिक हो ऐसा आम मांसधातु के लिए उत्तम पोषक बनता है।

कफदोषजन्य खाँसी एवं श्वास के रोगियों के लिए मधु के साथ आम खाना एवं दूध पीना हितकर नहीं है।

मधु के साथ पके आम के सेवन से क्षय, प्लीहा, वायु एवं कफदोष दूर होता है। आम के रस में घी डालकर सेवन करने से वह जठराग्निदीपक,

बलवर्धक, जख्म भरनेवाला तथा वायु एवं पित्तदोष का नाशकर्त्ता बनता है।

पके आम के रस के पापड़ तृषा, उल्टी एवं वायु-पित्तादि दोषों को दूर करता है, थोड़ा रेचक, रुचिकर, पाचन में हल्का, शरीर में स्थित वायुदोष का निवारण करता है।

युनानी हकीम पके आम को कामोद्दीपक, प्रकृति को मृदु करनेवाला, शरीर की दुर्गन्ध को हरनेवाला, सिरदर्द, थकान, तृषा, आलस्य, क्षय, वृद्धावस्था के कारण जीर्णता को दूर करनेवाला मानते हैं।

*

फालसा

फासला पाचन में हल्का, स्निग्ध, मधुर, अम्ल और तिक्त है। कच्चे फल का पाक खट्टा एवं पके फल का विपाक मधुर, शीतवीर्य, वात-पित्तशामक एवं रुचिकर्त्ता होता है।

फालसा के पके फल स्वाद में मधुर, स्वादिष्ट, रुचिकर, पाचन में हल्के, शौच अटकानेवाले, तृषा-शामक, उलटी मिटानेवाले, रेच में सहायक, हृदय के लिए खूब हितकारी है। वह रक्तपित्तनाशक, वातशामक, कफहर्त्ता, पेट एवं यकृत के लिए शक्तिदायक, वीर्यवर्धक, दाहनाशक, वात-पित्तशामक, सूजन मिटानेवाला, पौष्टिक, कामोद्दीपक, पित्त का ज्वर मिटानेवाला, हिचकी एवं श्वास की तकलीफ, वीर्य की कमजोरी एवं क्षय जैसे रोगों में लाभकर्त्ता है। वह रक्तविकार को दूर करके रक्त की वृद्धि भी करता है।

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से फालसा में विटामिन 'सी' एवं केरोटीन तत्त्व भरपूर मात्रा में हैं। गर्मी के दिनों में फालसा एक उत्तम पौष्टिक फल है। फालसा शरीर को नीरोगी एवं हृष्ट-पुष्ट बनाता है। फ़ालसा का शर्बत उत्तम 'हार्टटॉनिक' है।

फालसा के फल के अंदर बीज होता है। फालसे को बीज के साथ भी खा सकते हैं।

शरीर में से किसी भी मार्ग के द्वारा होनेवाले रक्तस्राव की तकलीफ में पके फालसे के रस का शर्बत बनाकर पीना लाभकर्त्ता है। यह शर्बत स्वादिष्ट एवं रुचिकर होता है। गर्मियों के दिनों में शरीर में होनेवाले दाह, जलन, पेट एवं दिमाग जैसे महत्त्वपूर्ण अंगों की कमजोरी आदि फालसा के सेवन से दूर होती है। फालसा का मुरब्बा भी बनाया जाता है।

पेट का शूल : सिकी हुई ३ ग्राम अजवाइन में फालसा का रस २५ से ३० ग्राम डालकर थोड़ा-सा गर्म कर पीने से पेट का शूल मिटता है।

पित्तविकार : गर्मी के दोष, नेत्रदाह, मूत्रदाह, छाती या पेट में दाह, खट्टी डकार आदि की तकलीफ में फालसा के रस का शर्बत बनाकर पीना तथा अन्य सब खुराक बन्द कर केवल सात्त्विक खुराक लेने से पित्तविकार मिटते हैं और अधिक तृषा में भी राहत होती है।

हृदय की कमजोरी : फालसा का रस, नींबू का रस, सेंधव, काली मिर्च योग्य प्रमाण में लेकर उसमें मिश्री या शक्कर मिलाकर पीने से हृदय की कमजोरी में लाभ होता है।

पेट की कमजोरी : पके फालसे के रस में गुलाबजल एवं शक्कर मिलाकर रोज पीने से पेट की कमजोरी दूर होती है एवं उल्टी, उदरशूल, उबकाई आना आदि तकलीफें दूर होती हैं एवं रक्तदोष भी मिटता है।

दिमाग की कमजोरी : कुछ दिनों तक नाश्ता के स्थान पर फालसा का रस उपयुक्त मात्रा में पीने से दिमाग की कमजोरी एवं सुस्ती दूर होती है, फुर्ती और शक्ति पैदा होती है।

मूढ़ या मृत गर्भ में : कई बार गर्भवती महिलाओं के गर्भाशय में स्थित गर्भ मूढ़ या मृत हो जाता है। ऐसी अवस्था में पिण्ड को जल्दी निकालना एवं माता का प्राण बचाना आवश्यक होता है। ऐसी परिस्थिति में अन्य कोई उपाय न हो तो फालसा के मूल को पानी में घिसकर उसका लेप गर्भवती महिला की नाभि के नीचे पेड़ू, योनि एवं कमर पर करने से पिण्ड जल्दी बाहर आ जायगा।

श्वास, हिचकी, कफ : कफदोष से होनेवाले श्वास, सर्दी तथा हिचकी में फालसा का रस थोड़ा

गर्म करके उसमें थोड़ा आदू का रस एवं सिंधव डालकर पीने से कफ बाहर निकल जाता है तथा सर्दी, श्वास की तकलीफ एवं हिचकी मिट जाती है।

मूत्रदाह : पके फालसे २५ ग्राम, आँवले का चूर्ण ५ ग्राम, काली द्राक्ष १० ग्राम, खजूर १० ग्राम, चंदन चूर्ण ५० ग्राम, सोंफ का चूर्ण १० ग्राम लें। प्रथम आँवला, चंदन चूर्ण एवं सोंफ को कूटकर चूर्ण बना लें। फिर खजूर एवं द्राक्ष को आधा कूट लें। फालसा भी आधा कूट लें। अब रात्रि में यह सब पानी में भीगोकर उसमें शक्कर २० ग्राम डालकर सुबह में यह सब अच्छी तरह से मिश्रित करके छान लें। उसके दो भाग करके सुबह-शाम दो बार पियें। खाने में दूध, घी, रोटी, मक्खन, फल एवं शक्कर की चीजें लें। तमाम गर्म खुराक खाना बंद कर दें। इस प्रयोग से मूत्र की, गुदा की, आँख की, योनि की या अन्य किसी भी प्रकार की जलन मिटती है। महिलाओं को रक्त गिरना, अति मासिकस्राव होना तथा पुरुषों का प्रमेह आदि मिटता है। दिमाग की अनावश्यक गर्मी दूर होती है।

*

गुड़ : एक लाभदायक खाद्य

गन्ने के रस से चीनी बनाने में कैल्शियम, लौह तत्त्व, गंधक, पोटेशियम, फास्फोरस आदि महत्त्वपूर्ण तत्त्व नष्ट हो जाते हैं जबकि गुड़ में ये तत्त्व मौजूद रहते हैं। गुड़ में प्रोटीन ८ %, वसा ०.९ %, कैल्शियम ०.०८ %, फास्फोरस ०.०४ %, कार्बोहाईड्रेट ६५ % होता है और विटामिन 'ए' २८० यूनिट प्रति ९०० ग्राम में होता है।

पांडुरोग और अधिक रक्तस्राव के कारण रक्त में हीमोग्लोबिन कम हो जाता है तब लौह तत्त्व की पूर्ति के लिये पालक का प्रयोग किया जाता है। पालक में १.३ %, केले में ०.४ % एम. जी. लौह तत्त्व होता है परन्तु गुड़ में ११.४ % एम. जी. लौह तत्त्व होता है।

महिलाओं में आमतौर पर लौह तत्त्व की कमी पायी जाती है। यह मासिक धर्म की गड़बड़ी के कारण होता है। कई महिलाओं का पेट आयर्न कैप्सूल से गड़बड़ हो जाता है तथा कुछ को दस्त भी लग जाते हैं। उन्हें गुड़ फायदा पहुँचा सकता है।

गुनगुने पानी में गुड़ को घोलकर खाली पेट देने से विशेष लाभ होता है। यह दोपहर को भी भोजन के दो घंटे बाद दिया जा सकता है। दोनों समय भोजन के बाद गुड़ की एक छोटी डली खाना एक सरल तरीका है।

गुड़ चिक्की के रूप में भी काफी प्रचलित है। छिलकेवाली मूँग की पानीवाली दाल में गुड़ मिलाकर भी खाया जा सकता है।

गुड़ में कैल्शियम होने के कारण बच्चों की हड्डी की कमजोरी एवं दंतक्षय में यह बहुत लाभकारी है। बढ़ते बच्चों के लिये यह अमृत तुल्य है।

गुड़ में विटामिन 'बी' भी पर्याप्त मात्रा में होता है। इसमें पैन्टोथिनिक एसिड, इनासिटोल सर्वोपरि है जो कि मानसिक स्वास्थ्य के लिये हितकारी है। आयुर्वेद में तो एक जगह लिखा है कि दही, मट्ठा, मक्खन और गुड़ खानेवाले को बुढ़ापा कष्ट नहीं देता है।

पोटेशियम हृदयरोगों में लाभकारी है जो गुड़ में मौजूद होता है। यह पोटेशियम केले और आलू में भी पाया जाता है। अत्यधिक चीनी नुकसानकारक है। इसलिए प्राकृतिक शक्कर में गुड़, पिंडखजूर, किशमिश आदि फायदेमंद हैं।

संकलनकर्त्ता : एक साधक

*

पूज्यश्री द्वारा हरिद्वार में उद्घाटित
दस नई ऑडियो कैसेट

(१) भक्त की परीक्षा (२) अपने आपमें बैठो (३) शरणागति योग (४) अपनी खबर (५) सत्य का प्रभाव (६) परम कल्याण का मार्ग (७) हो जा अजर, हो जा अमर (८) जगत स्वप्न है (९) आस्था और विवेक (१०) आगे बढ़ो-आगे बढ़ो

आज कल मुम्बई एवं थाना के उप-नगरों में 'ऋषि प्रसाद' के प्रचार-प्रसार की विशेष हलचल मची हुई है । मुलुन्ड में १ मई को 'ऋषि प्रसाद सदस्यता अभियान' के उद्‌घाटन के अवसर पर भागवत् के सुप्रसिद्ध कथाकार श्रद्धेय श्री रमेशभाई ओझा ने कहा :

''भगवान की कृपा से इस यज्ञ में निमित्त बनने का अवसर मिला है । झोंपड़ी से महलों तक लोगों ने प्रासाद तो बना लिए हैं लेकिन उनके जीवन में संतों के कृपा-प्रसाद की बहुत आवश्यकता है । ४०-५० टी. वी. चैनलवाले इस युग में छः लाख लोगों तक 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका संतों का कृपा-प्रसाद पहुँचा रही है । यह एक बड़ा चमत्कार है । चमत्कार को नमस्कार के इस यज्ञ के द्वारा यह पत्रिका भारत के घर-घर में पहुँचेगी ऐसी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं ।''

१० मई को उल्हासनगर नगर निगम में डिप्टी मेयर श्री कुमार आयलानी ने उल्हासनगर आश्रम में 'ऋषि प्रसाद सदस्यता अभियान' का उद्‌घाटन करते हुए 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने की आवश्यकता पर बल दिया । अन्धेरी, कान्दीवली, बोरीवली, गोरेगाँव, मलाड, दहीसर आदि में भी दिनांक : २४ मई '९८ से 'ऋषि प्रसाद सदस्यता अभियान' चलाया जा रहा है । वाशी, थाना, मुलुन्ड, भान्डूप, विक्रोली, चेम्बूर, घाटकोपर, सायन, भायखला, गोवंडी, नेरूल आदि उप-नगरों के साधकगण 'ऋषि प्रसाद सेवा दल' एवं सेवा केन्द्र के माध्यम से संगठित होकर सदस्य बनाकर घर-घर पत्रिकाएँ पहुँचाने का सेवा-कार्य कर रहे हैं ।

*

गाजियाबाद के भव्य जन्मोत्सव समारोह की पूर्णाहुति के पश्चात् शक्तिपात के समर्थ आचार्य पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज के पावन सान्निध्य में दिनांक : २५ से २८ अप्रैल तक हरिद्वार महाकुंभ में चार दिवसीय शक्तिपात साधना शिविर का आयोजन हुआ ।

'संत श्री आसारामजी नगर' में लाखों की संख्या में जनसमुदाय शक्तिपात का लाभ उठाने के लिये उमड़ पड़ा था । सुना था कि योगी अपनी परमात्म-मस्ती का आस्वाद, उसकी एक झलक लाखों भक्तों को एक साथ करा सकते हैं । वही बात यहाँ देखने को मिली । प्रेम व करुणास्वरूप गुरुदेव ने यहाँ खूब हरिरस लुटाया ।

दिनांक : २८ अप्रैल को पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में इस सदी के अंतिम महाकुंभ का अन्तिम स्नान करके लोगों ने धन्यता का अनुभव किया । २८ अप्रैल को ही पूज्य गुरुदेव एकान्तवास के लिये हिमालय की ओर प्रस्थान कर गये । करुणास्वरूप श्री गुरुदेव सारा दिन तो ब्रह्ममस्ती में रहते थे तथा शाम को वहाँ भी ग्रामवासियों को सत्संगामृत का पान कराते एवं गरीबों व बच्चों में स्वयं अपने करकमलों द्वारा फल वितरित करते थे ।

हजारों-हजारों लाड़ले पूनमव्रतधारियों के संकल्प व प्रेम ने पूज्यश्री को हिमालय की एकान्त कन्दराओं व शान्त-शीतल वातावरण से अमदावाद की ओर आकर्षित किया । फलस्वरूप दिनांक : ९ से ११ मई '९८ तक अमदावाद आश्रम में प्रभुप्रेम व ज्ञान-गंगा की धारा निरन्तर बहती रही । ११ मई को हजारों पूनमव्रतधारियों ने पूज्य बापूजी के दर्शन कर अन्न-जल ग्रहण किया । ये लाड़ले साधक किसी भी तरह की प्रतिकूल परिस्थिति होने पर भी अपने गुरुदेव के दर्शन के लिये देश के किसी भी कोने में हों, हर पूनम पर पहुँच ही जाते हैं ।

इस वैशाखी पूर्णिमा के अवसर पर पूज्य बापू ने विशाल जनसमुदाय को संबोधित करते हुए कहा :

''प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह अपना कर्त्तव्य ईश्वर की पूजा समझकर पूरी ईमानदारी से करे। जिस तरह से अष्टधा प्रकृति से परमात्मा भिन्न हैं ऐसे ही तुम भी भिन्न हो।

जो गुण और गुणों के कार्य सृष्टि में होते हैं वे भगवान से भिन्न हैं। जैसे, भगवान उनसे भिन्न हैं वैसे ही तुम भी उनसे भिन्न हो। नहीं जानते हैं तब तक भगवान कहीं और लगते हैं और हम कहीं और। भगवान को अपने से दूर मानने की भ्रांति बनी रहती है। जब जान लिया तो भगवान है तो अपना आपा ही। इस अनुभव को आत्मसात् कर लो...''

✻

गर्मियों के दिनों में हर वर्ष की तरह इस बार भी गुजरात के खेड़ब्रह्मा तहसील के लांबड़िया के छाछ केन्द्र में ७०० परिवार एवं कोटड़ा (छावनी) विस्तार के गरीब आदिवासियों के १००० परिवार, कुल मिलाकर १७०० परिवारों में १५०० लिटर छाछ का वितरण किया जाता है। इस इलाके के दोतेड़, लांबड़िया, कोटड़ा, देमती, गोलवांड़, मीठीवेरी, मालवास, दोतक, टेबड़ा आदि गाँवों के सैकड़ों परिवार इन छाछ केन्द्रों का लाभ उठा रहे हैं। तदुपरांत, देश भर की कई योग वेदान्त सेवा समितियों के द्वारा भी अपने अपने विस्तारों में छाछ वितरण केन्द्र, पानी के प्याऊ आदि सेवाभाव से चलाये जाते हैं।

पू. बापू के सत्संग-कार्यक्रम

पंचेड़ (रतलाम) आश्रम में

विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर

दिनांक : 31 मई से 2 जून 1998

वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर

दिनांक : 4 से 10 जून 1998

जाहिर सत्संग दिनांक : 4 से 7 जून

रोज शाम 4 से 7

स्थान : संत श्री आसारामजी आश्रम, पंचेड़ (नामली), जि. रतलाम (म. प्र.).

फोन : (07412) 81263, 35737, 32329.

नई विडियो कैसेट

✻ महाकुंभ पर्व हरिद्वार १९९८ में आयोजित ध्यान योग साधना शिविर की तात्त्विक व सूक्ष्म सत्संग-प्रवचनों की विडियो कैसेट भाग १ से १० सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। इन्हें डाक द्वारा मँगवा सकते हैं। १० विडियो कैसेट डाक खर्च सहित रू. १८१०/-

✻ पाँच नई विडियो कैसेट : (१) सफलता का रहस्य (२) उद्धार कैसे हो ? (३) अमृत के घूँट (४) मैं कौन हूँ ? (५) महापुरुषों की करुणा।

५ विडियो कैसेट डाक खर्च सहित रू. ६९०/-

११ मई, ९८ बुद्धपूर्णिमा के दिन संत श्री आसारामजी आश्रम, अहमदाबाद आश्रम के मंडप में हरिकीर्तन में हरिभक्तों के साथ हरिमस्ती में मस्त धनभागी सज्जन स्वभाव गुजरात राज्य के मुख्य मंत्री श्री केशुभाई पटेल।

करते हैं हम आज यहाँ पर 'ऋषि प्रसाद' से इकरार। बापूजी के 'ऋषि प्रसाद' का हम करेंगे प्रचार ॥
धनभागी हैं वे जो आप तरते हैं दूसरों को तैराते हैं। आप जपे औरों को जपावे।

'ऋषि प्रसाद अभियान' के दौरान सदस्य बनाते हुए लोकलाडीले कथाकार श्री रमेशभाई ओझा।

'ऋषि प्रसाद अभियान' द्वारा मुंबई मायानगरी में मायापति प्रभु का ज्ञान और रस लोगों तक पहुँचानेवाले धनभागी साधक।

LICENSED TO POST W/O PRE-PAYMENT : AHMEDABD PSO LICENCE NO. 207 Regd. No. GAMC/1132. BOMBAY, BYCULLA PSO LICENCE NO. 03 Regd. No. MH/MNV-02.